वार्षिक रु. ८०
मूल्य रु. १०

विवेक ज्योति

वर्ष ५३ अंक ४
अप्रैल २०१५

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक ४

वार्षिक ८०/– **एक प्रति १०/**

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/–
आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ११०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ५००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

श्रद्धेय स्वामी श्री प्रपत्त्यानन्दजी
संपादक, विवेक ज्योति,
सादर प्रणाम !

आपका शुभाशीषमय उपहार 'विवेक-ज्योति' पत्रिका प्रतिमाह मुझे प्राप्त हो रही है। अनुगृहीत हूँ। मैं समय निकालकर हर अंक पढ़ता हूँ तथा घर ले जाकर परिवारजनों को पढ़ने के लिये कहता हूँ। हर अंक संग्रहणीय है। वर्तमान समय में सम्यक् आस्था और उत्तम संस्कारों का संकट है। इस संकट के निवारण में 'विवेक-ज्योति' के द्वारा उल्लेखनीय भूमिका निभाई जा रही है। प्रेरणापुंज पूज्य स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन से जुड़ी अनेक घटनाएँ और जानकारियाँ इस पत्रिका के माध्यम से जानने को मिल रही हैं। इसमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग करने वाले सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

स्नेहाधीन

- डॉ. दिलीप धींग, निदेशक : अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र

श्रद्धेय सम्पादक प्रपत्त्यानन्दजी, विवेक ज्योति के प्रकाश में आनन्द ही आनन्द है, सामग्री चयन और नियमितता का आदि काल से प्रशंसक हूँ। **- पुरुषोत्तम नेमा, गोटेगाँव**

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान - रायपुर
२. प्रकाशन की नियतकालिकता - मासिक
३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक - स्वामी सत्यरूपानन्द
५. सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द
राष्ट्रीयता - भारतीय
पता - रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी सत्यरूपानन्द

अप्रैल माह के जयन्ती और त्योहार

- **०२ महावीर जयन्ती**
- **०४ हनुमान जयन्ती**
- **१५ वल्लभाचार्य जयन्ती**
- **२१ अक्षय तृतीया**
- **२३ शंकराचार्य और सूरदास जयन्ती**
- **२४ रामानुजाचार्य जयन्ती**
- **२७ सीता नवमी**

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द जी की यह मूर्ति रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द सोसायटी, जमशेदपुर की है। इस आश्रम की शुरुआत १९२० में वहाँ के स्थानीय भक्तों द्वारा हुई थी और १९२७ में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के शाखा-केन्द्र के रूप में इसका पंजीयन हुआ। यह आश्रम अपनी शैक्षणिक सेवाओं के लिए प्रसिद्ध है। आश्रम द्वारा संचालित अनेक विद्यालयों में आधुनिक तकनीकि एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा दी जाती है।

(आवरण-पृष्ठ सज्जा : स्वामी अनुग्रहानन्द)

श्रीशंकराचार्य

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ।।१।।

हे भगवन् (विष्णो)! मेरा अविनय दूर कीजिए, मेरे मन का दमन कीजिए, विषयों के प्रति मेरी मृगतृष्णा को शान्त कीजिए। प्राणियों के प्रति मेरे दयाभाव का विस्तार कीजिए, और संसार सागर से मुझे पार कीजिए।

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ।।२।।

श्रीपति (लक्ष्मीपति) के उन चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जिनका मकरन्द (पुष्परस) मन्दाकिनी (गंगा) के समान है और सौरभ सच्चिदानन्द है तथा जो संसार के भय और खेद का छेदन करने वाले हैं।

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वं ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ।।३।।

हे नाथ! (मुझ - जीवात्मा और आप - परमात्मा में) भेद न होने पर भी, मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं; क्योंकि समुद्र की ही तरंग होती है; तरंग का समुद्र नहीं होता।

पुरखों की थाती

पिपीलिकार्जितं धान्यं मक्षिका-संचितं मधु ।
लुब्धेन संचितं द्रव्यं, समूलं च विनश्यति ।।४४४।।

– चींटी द्वारा एकत्रित अन्न, मधुमक्खी द्वारा संचित मधु और लोभी व्यक्ति द्वारा एकत्रित धन, ये तीनों ही समूल नष्ट हो जाते हैं।

पुष्पेषु तेषु नष्टेषु यद्वत् सूत्रं न नश्यति ।
तथा देहेषु नष्टेषु नैव नश्यामि सर्वगः ।।४४५।।

– जैसे फूलों के नष्ट हो जाने पर भी माला में अदृश्य रूप से स्थित धागा नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा-रूपी 'मैं' नष्ट नहीं होता।

पुत्र-दार-कुटुम्बेषु प्रसक्ताः सर्व-मानवाः ।
शोक-पंकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ।।४४६।।

– पुत्र, पत्नी तथा परिवार में आसक्त रहनेवाले सभी मनुष्य वन के वृद्ध हाथियों के समान सदैव शोक के दलदल में डूबते रहते हैं। (महाभारत)

पुत्र-मित्र-कलत्रादि तृष्णया नित्य-कृष्टया ।
खगेष्विव किरात्येदं जालं लोकेषु रच्यते ।।४४७।।

– तृष्णा अर्थात् कामना-वासना-रूपी किरातिनी द्वारा मनुष्य-रूपी पक्षियों को पकड़ने के लिये यह पुत्र-मित्र-पत्नी रूपी जाल फैलाया जाता है।

पूर्व-जन्मनि या विद्या पूर्व-जन्मनि यद्धनम् ।
पूर्व-जन्मनिया बुद्धिः अग्रे धावति धावति ।।४४८।।

– व्यक्ति ने पिछले जन्मों में जो विद्या पढ़ी थी, पिछले जन्मों में जो धन दान किया था, पिछले जन्मों में जैसी बुद्धि विकसित की थी, वह वर्तमान जन्म में आगे-आगे दौड़ती है – अर्थात् विना प्रयास ही प्राप्त होती है।

विविध भजन

जय रघुनन्दन जय सियाराम

कुलदीप उप्रेती

जय रघुनन्दन जय सियाराम ।
राधावल्लभ जय घनश्याम ।।
तुमही जल में तुम्ही थल में ।
तुम जीवन की हर हलचल में ।।
हे जगत्स्रष्टा ! तुम्हें प्रणाम ।। जय।।
तुमको चाहूँ तुमको पाऊँ ।
तुमको ध्याऊँ तुमको गाऊँ ।।
बस जाओ मन में अविराम ।। जय।।
तुम्ही ईश्वर तुमही ईसा ।
तुम्ही हजरत तुमही मूसा ।।
भगवन तुम्हरे अगणित नाम ।।जय।।
कहते तुमको पतित उद्धारक ।
मैं भी हूँ पतितों का नायक ।।
शरण में मुझको ले लो राम ।।जय।।
मैं हूँ सोता जीवन खोता ।
चाहूँ बहुत कुछ, कुछ नहिं होता ।।
शुभमति दे दो आठों याम ।।जय।।
भगवन मैं हूँ तेरा बालक ।
तुम्हीं हो मेरे प्रतिपालक ।।
सब विधि करते पूरणकाम ।।जय।।
केवल भगवन तेरा सहारा ।
इस दुनियाँ में कौन हमारा ।।
चरण शरण में दो विश्राम ।।जय ।।
करूँ मैं विनती तुमसे स्वामी ।
हे जगद्रष्टा अन्तर्यामी ।।
मुझे दिखा दो अपना धाम ।।जय।।
मन ये करता खूब तमाशा
चाहे नूतन विषय बताशा ।
इसे बना दो अब निष्काम ।।जय ।।
तुम्हीं मेरे गुरु बन जाओ ।
भक्ति ज्ञान रसपान कराओ ।।
जगद्‌गुरू तुम्हरो ही नाम ।।जय ।।
विनय सुनो मेरे मन मोहन ।
तुम बिन कौन सुने मम रोदन ।।
बस जाओ उर में अभिराम ।।जय।।

शिव, हनुमान और श्रीराम के भजन

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

१. शिव नाचत डमरू बजाय

शिव नाचत डमरू बजाय ।।
हाथ में डमरू कटि व्याघ्र छाला,
अंग में भस्म, नहीं शाल-दुशाला ।
सिर पर गंगा बहाय ।। शिव..
शिव के शीश अर्ध शशि सोहै,
जग जन-जन के मन को मोहै ।
गले नाग लपटाय ।। शिव..
डिम डिम डिम डिम डमरू बोले,
हर हर बम बम मृदंग बोले ।
वीणा ओम नमः शिवाय ।। शिव..
नीलकण्ठ विषपायी शंकर,
करत ताण्डव नृत्य भयंकर ।
निश दिन भांग शिव खाय ।। शिव..
कबहुँ शिव गौरी संग नाचत,
कबहुँ शम्भु राम-गुण गावत।
कबहुँ समाधि में जाय ।। शिव..

२. जय जय हनुमान

जय कपीश जय कपीश जय जय हनुमान ।
अंजनीतनय महाबलवान ।।
पवनसुत रामदूत कपितनधारी ।
नाशत मद-मोह-लोभ-शोक-तापहारी ।। जय ..
धर्मनिष्ठ कर्मनिष्ठ हिय में श्रीराम ।
मारुतिनन्दन बुद्धिनिधान ।। जय ..
रणसुवीर सैन्यवीर हे शक्तिमान ।
रामकाजहित अर्पित प्राण ।। जय..

३. सीताराम भजो

सीताराम भजो सीताराम भजो- २
प्रेम के सिन्धु राम भजो ।
दीन के बन्धु राम भजो ।। सीताराम..
दशरथनन्दन राम भजो ।
कोशल्यासुत राम भजो ।। सीताराम
सीताराम सीताराम -४ ।। सीताराम

स्वच्छ भारत अभियान : एक अभिनव क्रान्ति के अग्रदूत स्वामी विवेकानन्द

सम्पादकीय

(गतांक से आगे)

भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का राष्ट्रीय स्वच्छता अभियान 'स्वच्छ भारत : स्वस्थ भारत' एक प्रशंसनीय कदम

प्रधानमन्त्री जी ने १५ अगस्त, २०१४ को लालकिले से महात्मा गाँधी की जयन्ती पर स्वच्छ भारत अभियान की घोषणा की। उनके मार्गदर्शन में सम्पर्ण भारत में 'राष्ट्रीय स्वच्छता अभियान' का प्रारम्भ किया गया और २५ सितम्बर से २३ अक्टूबर तक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम आयोजित किए गए। सम्पूर्ण देश ने गाँधी जयन्ती २ अक्टूबर, २०१४ को स्वच्छता की शपथ ली।

इस राष्ट्रव्यापी आन्दोलन में सम्पूर्ण राज्य के प्रबुद्ध नागरिकों, प्रशासनिक अधिकारियों और समाजसेवी संस्थाओं ने प्रयास प्रारम्भ कर दिए हैं। सरकारी स्तर पर ऐसा स्वच्छता आन्दोलन कभी नहीं हुआ। यदि सरकार, जनता और प्रशासन साथ दे, तो अवश्य शीघ्र ही भारत एक 'स्वच्छ भारत' में परिणत हो जाएगा।

स्वच्छता अभियान में रामकृष्ण मिशन का योगदान

मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि रामकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द स्वयं स्वच्छता-प्रिय थे। यह विरासत उन्हें अपने परिवार और भगवान श्रीरामकृष्ण देव से मिली थी। श्रीरामकृष्ण देव के स्वच्छतानुराग के सम्बन्ध में उनके शिष्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज कहते हैं – ठाकुर स्वच्छता बहुत पसन्द करते थे। अस्त-व्यस्तता वे बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे। छोटे-बड़े सभी कार्यों में वे नियम और समय का ध्यान रखते थे। ठाकुर कहते थे, प्रत्येक वस्तु को ठीक स्थान पर इस तरह रखना चाहिए कि अँधेरे में भी हाथ लगाने पर मिल जाए। हम लोगों में बूढ़े गोपाल दादा बहुत ही सुव्यस्थित व्यक्ति थे, इसलिए ठाकुर उनका काम बहुत पसन्द करते थे। महापुरुष महाराज को विश्वास था कि ठाकुर मठ में सर्वत्र भ्रमण कर रहे हैं, इसलिए मठ के किसी भी स्थान में वे जरा-सा भी मैला पसन्द नहीं करते थे।'' (शिवानन्द स्मृतिसंग्रह, खण्ड २, पृष्ठ ४५०)

स्वामी विवेकानन्द ने भी तत्कालीन भारत में स्वच्छता का सन्देश दिया और अपनी संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा और स्वास्थ्य का अभियान चलाया था। उसी शृंखला में आज भी हमारे आश्रम शहरी क्षेत्रों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में सदा जन-जागरण में सक्रिय हैं और देश को स्वच्छ और स्वस्थ बनाने में महान भूमिका निभा रहे हैं।

२९ सितम्बर, २०१४ को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने पत्र द्वारा सन्देश भेजकर इस अभियान में सहायता करने का निवेदन किया। वे अपने २९ सितम्बर, २०१४ के पत्र में लिखते हैं – ''... भारत सरकार के शहरी विकास, आवास और शहरी गरीबी उपशमन और संसदीय कार्यमन्त्री श्री एम. वैंकैया नायडू के २५ सितम्बर, २०१४ के लिखित पत्र के अनुसार सम्माननीय प्रधानमन्त्री जी ने २ अक्टूबर, २०१४ को 'स्वच्छ भारत अभियान' का आरम्भ किया है।

''हमारे देश के सभी नागरिकों को इसमें सहभागी करने का भारत सरकार का यह एक उत्तम प्रयास है। मैं आपलोगों से निवेदन करता हूँ कि आप इस 'स्वच्छ भारत अभियान' पर ध्यान दें और इस महान कार्य में अपने उपाय और साधनों के साथ योगदान कर अग्रसर हों। कृपया आपके आश्रम से सम्बन्धित सभी लोगों – जैसे भक्तों, स्वयंसेवकों, शिक्षकों और छात्रों आदि को इस कार्य में सम्मिलित करें।''

महासचिव महाराज की प्रेरणा और रामकृष्ण मिशन के अनुरागियों भक्तों, स्वयंसेवकों, शिक्षकों और छात्रों के सक्रिय सहयोग से रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों को आयोजित करके इस महान अभियान में योगदान किया गया।

छत्तीसगढ़ में स्वच्छ भारत अभियान का प्रभाव और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर का योगदान

स्वच्छता अभियान पर मुख्यमन्त्री जी से चर्चा करते हुए

२० अक्टूबर, २०१४ को स्वामी सत्यरूपानन्द जी को लिखे पत्र में छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री डॉ. रमन सिंह ने लिखा – ''श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी, ... प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने महात्मा गाँधी की १५०वीं जयन्ती, २ अक्टूबर, २०१९ तक स्वच्छ भारत बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए समाज

की विभूतियों को 'नौ रत्न' मनोनीत करते हुए उनसे यह आग्रह किया जा रहा है कि वे अपनी प्रतिष्ठा, विश्वसनीयता और सेवा-भाव के माध्यम से इस अभियान का नेतृत्व करें, अपने साथ अन्य प्रतिष्ठित लोगों को जोड़ें तथा समग्र रूप से प्रभावकारी सामाजिक नेटवर्क की रचना में अग्रणी भूमिका का निर्वाह करें। ...समाज में यह सन्देश प्रेषित करना है कि हर व्यक्ति को सप्ताह में दो घण्टे और वर्ष में १०० घण्टे स्वच्छता के लिए श्रमदान करना है। ...मैं सहर्ष घोषित करता हूँ कि आप छत्तीसगढ़ में 'राष्ट्रीय स्वच्छता अभियान' के सर्वोच्च प्रतिनिधि हैं। आपको देखकर अन्य लोग भी सीखेंगे और आपका अनुसरण करेंगे। मुझे विश्वास है कि आप 'राष्ट्रीय स्वच्छता अभियान' के कार्यक्रमों में अग्रणी भूमिका का निर्वाह करेंगे तथा अपने मौलिक प्रयासों व नवाचार से इस जन अभियान को सुदृढ़ करने में विशेष योगदान देंगे।''

छत्तीसगढ़ में आयोजित कार्यक्रम

पूरे छत्तीसगढ़ में ७१ लाख नागरिकों ने २ अक्टूबर, २०१४ को गाँधी जयन्ती के अवसर पर एकसाथ प्रात: ९.४५ बजे स्वच्छता-शपथ ग्रहण की। इसी दिन १६ लाख नागरिकों ने श्रमदान में भाग लिया। विश्व हाथ-धुलाई दिवस १५ अक्टूबर को ७० लाख लोगों ने साबुन से हाथ धोए, इनमें ५२ लाख बच्चें सम्मिलित हैं। इसी दिन ४० लाख लोगों ने रैली में भाग लिया।

भिलाई में स्वच्छता शिविर का आयोजन

२३ नवम्बर, २०१४ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में श्रीरामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई में स्वच्छता शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी और भिलाई इस्पात संयन्त्र, एच. आर. डी. के जेनरल मैनेजर श्री चैतन्य ऋषि जी ने स्वच्छता के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालकर युवक-युवतियों को स्वच्छता की प्रेरणा दी।

'विवेक ज्योति' की महान भूमिका

रामकृष्ण मिशन, रायपुर से प्रकाशित होनेवाली 'विवेक-ज्योति' आज ५३ वर्षों से समाज में मानसिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, प्राकृतिक स्वच्छता हेतु सद्विचारों का सम्प्रेषण कर अमिट योगदान कर रही है।

विभिन्न स्थानों में सभाएँ

हमारे भावधारा की इकाई रामकृष्ण सेवा समिति, कोनी, बिलासपुर के द्वारा आयोजित व्याख्यान शिवरीनारायण, बिजुरी, चिरमिरी में और आरंग, धमतरी, दुर्ग और रायपुर के महाविद्यालयों और जनसभाओं में और महामना मालवीय मिशन के द्वारा आयोजित महाविद्यालयों की सभाओं में अन्य चीजों के साथ स्वच्छता और स्वच्छता अभियान के बारे में भी स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने छात्र-छात्राओं और जनता को अवगत कराया।

लोक-संस्कृति में स्वच्छता का महत्व

लोकसंस्कृति, ग्रामीण संस्कृति स्वच्छता की प्रथम पाठशाला है। प्रात: ही माताएँ घर को झाड़ू से साफकर, गोबर से लीप-पोत कर सफाई करती हैं। घर के बर्तनों को माँजकर स्नान कर भगवान की पूजा के बाद खाना बनाती हैं। यह हमारी प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा है, जो आज भी हमें गाँवों में देखने को मिलती है। लेकिन उन्हें स्वच्छता के अन्य पहलुओं से अवगत कराना है।

एक स्वस्थ और स्वच्छ राष्ट्र के निर्माण हेतु अन्यान्य स्वच्छता पर भी गम्भीरतापूर्वक ध्यान दें –

मानसिक स्वच्छता – हम मन से राग-द्वेष को निकालकर मन को शुद्ध बनावें और सबसे प्रेम और सहयोग करें।

बौद्धिक स्वच्छता – सार्वभौमिक शाश्वत सत्य को प्रतिपादित करनेवाले उदार भावपूर्ण सत्साहित्यों का अध्ययन करें और बुद्धि को भ्रम से मुक्त कर विमल, उदार और विवेकी बनाकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करते हुए लक्ष्य की ओर अग्रसर हों।

सांस्कृतिक स्वच्छता – भारत की महान विरासत सनातन सार्वजनीन सर्वजन-मंगलकारी संस्कृति को आधुनिक भौतिकता के होड़ में आधुनिक विषमयी संस्कृति से कलुषित न करें और कलुषित होने से बचाने के लिए युवाशक्ति को प्रेरणा दें।

प्रशासनिक स्वच्छता – प्रशासन में आगत भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण और अत्याचार से मुक्त कर एक नैतिक स्वच्छ प्रशासनिक परिवेश का निर्माण करें।

प्राकृतिक स्वच्छता – प्राकृतिक दोहन और प्राकृतिक विकृति से प्रकृति में हो रहे असन्तुलन से होनेवाली विभीषिकाओं से देश को बचाने का प्रयास करें।

आशा है सबके सहयोग से भारत शीघ्र ही विश्व में स्वच्छ भारत के रूप में प्रथित हो जाएगा। ❍❍❍

जीवन का अन्तिम पर्व

स्वामी विवेकानन्द

अब मैं इतना निश्चिन्त तथा शान्त हो चुका हूँ, जितना मैं पहले कभी नहीं था।... मेरी नौका क्रमश: उस शान्त बन्दरगाह की ओर जा रही है, जहाँ से उसे फिर कभी हटाया नहीं जाएगा। जय माँ, जय माँ ! अब मेरे मन में कोई इच्छा या महत्त्वाकांक्षा नहीं है। माँ का नाम धन्य हो ! मैं श्रीरामकृष्ण का दास हूँ। मैं एक साधारण यन्त्र मात्र हूँ – मैं अन्य कुछ नहीं जानता, जानने की कोई इच्छा भी नहीं है। 'वाहे गुरु की फतह !'[५२]

माँ फिर अनुकूल हो रही हैं। कार्य अब सफल हो रहे हैं। ऐसा होना ही था। कर्म के साथ दोष अवश्य जुड़ा रहता है। मैंने उस संचित दोष का मूल्य बुरे स्वास्थ्य के रूप में चुकाया है। मैं प्रसन्न हूँ, इससे मेरा मन भी हल्का हो गया है। जीवन में अब ऐसी शान्ति और कोमलता आ गयी है, जो पहले कभी नहीं थी। मैं अब आसक्ति तथा उसके साथ ही अनासक्ति भी सीख रहा हूँ, और क्रमश: अपने मन का स्वामी बनता जा रहा हूँ।....

माँ ही अपना काम कर रही हैं, मैं अब अधिक चिन्ता नहीं करता। प्रतिक्षण मेरे समान हजारों कीट-पतंग मरते हैं। उनका काम उसी प्रकार चलता रहता है। माँ की जय हो ! ... मेरा सम्पूर्ण जीवन – माँ की इच्छा के प्रवाह में नि:संग भाव से बहना – यही रहा है। मैंने जब-जब इसमें बाधा डालने का यत्न किया है, तब-तब कष्ट पाया है। उनकी इच्छा पूर्ण हो ! ...

मैं आनन्द में हूँ, मानसिक शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ और अब पहले की अपेक्षा अधिक वैराग्यवान हो गया हूँ। दिन-पर-दिन अपने सगे-सम्बन्धियों के प्रति प्रेम घटता जा रहा है और 'माँ' (जगदम्बा) के प्रति प्रेम बढ़ता जा रहा है। दक्षिणेश्वर में वटवृक्ष के नीचे श्रीरामकृष्ण के साथ रात्रि-जागरण की स्मृतियाँ एक बार फिर जाग्रत हो रही हैं। और जहाँ तक कार्य का प्रश्न है, कौन-सा कर्म? किसका कर्म? मैं किसके लिए कर्म करूँ?

मैं स्वतन्त्र हूँ। मैं माँ का बालक हूँ। वे ही काम करती हैं, वे ही खेलती हैं। मैं क्यों योजना बनाऊँ? मैं क्या योजना बनाऊँ? बिना मेरी योजना के ही, 'माँ' की इच्छा के अनुसार चीजें आयीं और गयीं। हम उनकी कठपुतलियाँ हैं और वे सूत्रधार हैं।[५३]

उन पवित्र चरणों में ही ज्ञानियों द्वारा आकांक्षित ज्ञान की पूर्णता समायी है ! उन्हीं पुनीत चरणों में प्रेमियों द्वारा आकांक्षित प्रेम की पूर्णता समायी है ! मुझे बताओ, उन श्री चरणों के सिवाय भव-ताप से दग्ध जीव अन्यत्र कहाँ शरण पायेंगे ! हाय ! मनुष्य कितने मूर्ख हैं, जो अपना जीवन कलह में बिता देते हैं। पर वे कब तक अज्ञानी बने रहेंगे? अनन्त योनियों में भ्रमण करने के बाद जीवन-चक्र के संध्याकाल में सबको 'माँ' की गोद में आना ही होगा ![५४]

संग्राम में जय-पराजय होती है। मैंने अपनी गठरी बना ली है और महा मुक्तिदाता की बाट जोह रहा हूँ। "शिव, हे शिव, मेरी नैया को पार लगा दो"।

वस्तुत: ... मैं वही बालक हूँ, जो एकाग्र और विस्मित भाव से दक्षिणेश्वर में पंचवटी के नीचे बैठकर श्रीरामकृष्ण की अद्‌भुत वाणी को सुनता रहता था। यही मेरा सच्चा स्वभाव है; कर्म, उद्योग, परोपकार आदि सब ऊपरी बातें हैं। अब मैं फिर उनकी मधुर वाणी सुन रहा हूँ – वही चिरपरिचित कण्ठस्वर, जो मेरे अन्त:करण को रोमांचित कर देता था। बन्धन टूट रहे हैं, प्रेम का दीपक बुझ रहा है। कर्म रसहीन हो रहा है। मन से जीवन के प्रति आकर्षण भी दूर हो चुका है ! अब केवल प्रभु की मधुर गम्भीर पुकार ही सुनायी पड़ रही है – "आया – प्रभु, मैं आया।" वे कह रहे हैं, "मृतकगण मृतकों को दफनाते रहे; तुम मेरा अनुसरण करो।" – "मैं आता हूँ, मेरे प्राणप्रिय, मैं आता हूँ।"

हाँ, मैं आता हूँ। निर्वाण मेरे सामने है। उस शान्ति के अनन्त सागर का, जहाँ न पानी की हिलोरें हैं, न हवा की थपकियाँ – मैं बीच-बीच में उसका अनुभव करता हूँ।

मुझे हर्ष है कि मैंने जन्म लिया, हर्ष है कि मैंने कष्ट उठाया, हर्ष है कि मैंने बड़ी-बड़ी भूलें कीं और हर्ष है कि मैं निर्वाणरूपी शान्ति-सागर में विलीन होने जा रहा हूँ। खुद के लिए मैं किसी को बन्धन में छोड़कर नहीं जा रहा हूँ, न मैं कोई बन्धन ले जा रहा हूँ। चाहे मुझे इस शरीर की मृत्यु से मुक्ति मिले, या शरीर के रहते ही मुक्त हो जाऊँ, वह पहले का मनुष्य चला गया, सदा के लिए चला गया और फिर कभी वापस नहीं आयेगा। शिक्षादाता, गुरु, नेता और आचार्य विवेकानन्द चला गया – रह गया है, तो केवल वही बालक, प्रभु का चिरशिष्य, चिर-पदाश्रित दास। ...

जब मैं उनकी इच्छा के प्रवाह में बह रहा था, वे ही मेरे जीवन के सबसे मधुर क्षण थे। मैं फिर बह रहा हूँ, ऊपर उज्ज्वल तथा उष्ण सूर्य है और चारों ओर वनस्पति की हरियाली, गर्मी में सब कुछ निस्तब्ध और शान्त है – मैं धीमी

गति से नदी के उष्ण हृदय-पट पर बह रहा हूँ। यह अद्भुत प्रशान्ति, ऐसी प्रशान्ति जिससे लगता है कि कहीं यह भ्रम न हो, इस प्रशान्ति के भंग होने के भय से मैं हाथ-पैर नहीं चलाता।

मेरे कर्म के पीछे महत्त्वाकांक्षा थी, प्रेम के पीछे व्यक्तित्व, पवित्रता के पीछे भय और मेरे पथ-प्रदर्शन के पीछे शक्ति की लालसा। वे अब लोप हो रहे हैं और मैं बह रहा हूँ। मैं आ रहा हूँ। माँ, मैं तुम्हारी स्नेहमयी गोद में आ रहा हूँ। तुम जहाँ भी ले जाओगी, मैं बहता हुआ वहीं, उस नि:शब्द, अपरिचित और अद्भुत देश में आ रहा हूँ; नाटक का पात्र होकर नहीं, दर्शक बनकर आ रहा हूँ।

अहा! कितनी शान्ति है! हृदय के अन्तस्तल में मेरे विचार दूर से, बड़ी दूर से आते हुए मालूम होते हैं। वे निस्तेज, दूर के, धीमे स्वर में बोले हुए शब्द के समान जान पड़ते हैं और सब चीजों पर शान्ति छायी हुई है – मधुर, मधुमयी शान्ति, जैसी निद्रा के पूर्व दो-चार क्षणों के लिए अनुभव होती है; जब सारी चीजें दिखती हैं, पर छाया मात्र प्रतीत होती हैं – बिना भय के, बिना प्रेम के, और बिना भावनाओं के। शान्ति, जो चित्रों और मूर्तियों से घिरे हुए, एकान्त में अनुभव होती है। – मैं आया, प्रभु, मैं आया!

यह संसार है – न सुन्दर, न भद्दा – भावरहित इन्द्रिय-जनित बोध के समान। अहा! ... उस परमानन्द को कैसे कहूँ! सब कुछ शिव और सुन्दर है, मेरे लिए सभी वस्तुएँ अपना व्यावहारिक सम्बन्ध खो रही हैं, जिनमें सर्वप्रथम तो मेरा यह शरीर है। ॐ तत् सत्![५५]

मैं मानो असीम नील आकाश हूँ, कभी-कभी बादलों से घिर जाने पर भी सदा के लिए मैं वही असीम नील ही हूँ। ... यह हाड़-माँस का पिंजरा तथा सुख-दु:ख के व्यर्थ स्वप्न – इनकी फिर पृथक् सत्ता ही क्या है? मेरे स्वप्न दिनों-दिन टूटते जा रहे हैं। ॐ तत् सत्![५६]

दुर्भाग्य के आवरण काले और दुर्भेद्य हैं! परन्तु मैं ही सर्वमय प्रभु हूँ। मैं ज्योंही अपने हाथ उठाता हूँ, वे तत्काल विलुप्त हो जाते हैं। यह सब कुछ निरर्थक है। और भय? मैं भय का भी भय हूँ, आतंक का भी आतंक हूँ, मैं निर्भय, एक और अद्वितीय हूँ। मैं भाग्य का विधाता हूँ, मैं कपाल-मोचन हूँ। वाहे गुरु![५७]

हा! हा! हा! ... सब कुछ अच्छा है! बेकार की बात! वस्तुत: कुछ अच्छा है, तो कुछ बुरा। मैं अच्छे का भी आनन्द लेता हूँ और बुरे का भी। मैं ही ईसा था और मैं ही जुडास इस्केरियाट भी। दोनों ही मेरी लीला हैं, मेरे मनोविनोद हैं। ... साहसी बनो और जो भी आए, उसका सामना करो, अच्छा आये या बुरा, दोनों का स्वागत है, दोनों ही मेरे लिए खेल हैं। ऐसी कोई अच्छाई नहीं, जिसे मैं प्राप्त करना चाहूँ; ऐसा कोई आदर्श नहीं, जिसे पकड़ लेना चाहूँ; ऐसी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं, जिसे पूरा करना चाहूँ। मैं हीरों की खान हूँ; और अच्छे-बुरे की कंकड़ियों से खेल रहा हूँ। बुराई, तुम्हारे लिए अच्छा है कि तुम मेरे पास आओ; अच्छाई, तुम्हारे लिए भी अच्छा है कि तुम मेरे पास आओ। यदि ब्रह्माण्ड मेरे कान के पास ही भहराकर गिर पड़ता है, तो भी मुझे क्या? मैं वह शान्ति हूँ, जो बुद्धि के परे है। ... मैं सबके परे हूँ, मैं शान्ति हूँ।[५८]

मैं इस संसार के सुख-दु:ख रूपी महामारी के दुर्गन्ध से ऊपर उठता जा रहा हूँ; वे निरर्थक होती जा रही हैं। यह संसार एक स्वप्न-राज्य है। यहाँ किसी के हँसने-रोने का कोई मूल्य नहीं। ये सब केवल स्वप्न हैं और इन्हें देर-सबेर टूटना ही है।

अब मैं किसी भी चीज के लिए दुखी नहीं हो सकता। मैं उस शान्ति की उपलब्धि कर रहा हूँ, जो बुद्धि के परे है; और जो न सुख है न दु:ख, बल्कि इन दोनों से ऊपर है। ... अब मैं उस 'शान्ति', उस शाश्वत निस्तब्धता के निकट पहुँच रहा हूँ। जो चीज जैसी है, अब मैं उसे उसी रूप में देखना चाहता हूँ, उस शान्ति के भीतर, उसके अपने पूर्ण रूप में। ''जिसका आनन्द अपने आप में ही है, जिसकी इच्छाएँ अपनी आत्मा को लेकर ही हैं, वस्तुत: उसी ने जीवन का पाठ पढ़ा है।'' यही वह महान पाठ है, जिसे हमें अनेक जन्मों, स्वर्गों-नरकों में से गुजरते हुए सीखना है; वह पाठ यह है कि अपनी आत्मा के अतिरिक्त माँगने या इच्छा करने योग्य कुछ भी नहीं है। ''सबसे बड़ी वस्तु जिसे मैं प्राप्त कर सकता हूँ, वह आत्मा है।'' ''मैं मुक्त हूँ'' – अत: सुखी होने के लिए मुझे किसी भी दूसरी वस्तु की जरूरत नहीं है। ''मैं चिर काल से एकाकी हूँ, क्योंकि मैं मुक्त था, मुक्त हूँ और सर्वदा मुक्त ही रहूँगा।'' यही वेदान्त-मत है। मैं इतने सालों से इसी सिद्धान्त का प्रचार करता रहा, परन्तु अहा! कितने आनन्द का बात है, ... अब मैं इसका प्रतिदिन अनुभव कर रहा हूँ। हाँ, मैं अनुभव कर रहा हूँ कि ''मैं मुक्त हूँ।'' ''एकम् एकम् एकमेव अद्वितीयम्।''[५९]

सम्भव है कि मैं इस शरीर को एक जीर्ण वस्त्र के समान त्यागकर बाहर आ जाना पसन्द करूँ; परन्तु मैं कार्य करना बन्द नहीं करूँगा। मैं मानव जाति को सर्वत्र और तब तक प्रेरणा तथा सहायता देता रहूँगा, जब तक सभी लोग सर्वोच्च तत्त्व को जान नहीं लेते।[६०]

(समाप्त)

५२. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३२६; **५३.** वही, खण्ड ८, पृ. ३३०; **५४.** वही, खण्ड ८, पृ. २८५; **५५.** वही, खण्ड ८, पृ. ३३२-३४; **५६.** वही, खण्ड ८, पृ. ३१४; **५७.** वही, खण्ड ८, पृ. ३३९; **५८.** वही, खण्ड ८, पृ. ३१७; **५९.** वही, खण्ड ८, पृ. ३१६-१७; **६०.** वही, खण्ड १०, पृ. २१७

धर्म-जीवन का रहस्य (६/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

अभिमन्यु की भी यही समस्या है। सुभद्रा में इतनी सजगता नहीं है कि वह सजग रहकर उस चक्रव्यूह में पैठने और निकलने का रहस्य जान ले और अभिमन्यु का यह दुर्भाग्य है, उसने भी बात आधी ही सुनी। यदि अभिमन्यु में भी अंगद के समान सजगता होती, तो कह सकता था – 'नहीं, मैं तो चक्रव्यूह में नहीं जाऊँगा। मैं निकलने की कला नहीं जानता।' लेकिन पीठ ठोंकने वाले मिल ही जाते हैं। युधिष्ठिर और भीम ने कहा – बस, तुम चलो तो सही, हम तो तुम्हारे साथ ही हैं, हम तुम्हें वहाँ से निकाल लाएँगे। इन पीठ ठोककर निकाल लाने का आश्वासन देनेवालों पर जरा भी भरोसा मत कीजिए। ये बेचारे न जाने कहाँ छूट जाएँगे और आप अकेले पड़ जाएँगे। अभिमन्यु के साथ चक्रव्यूह में कोई जा ही नहीं सका। हम लोग भी संसार के चक्रव्यूह में प्रविष्ट होकर अकेले पड़ जाते हैं, इससे बाहर निकलने की कला नहीं जानते और शत्रुपक्ष के बड़े-बड़े महारथी – काम, क्रोध, लोभ, अभिमान आदि दुर्गुण हमारे जीवन में आते हैं और ये सारे दुर्गुण मिलकर हमें परास्त कर देते हैं।

रामायण तथा महाभारत में यह जो सूत्र है, इसका तात्पर्य यह है कि हम जब भी धर्म की बातें सुनें, ज्ञान और भक्ति की बातें सुनें, तो उसके समग्र पक्ष को पूरी तौर से सुनें और सुनकर उसका सही अर्थ ग्रहण करें। बहुधा हम लोगों में इतना धैर्य ही नहीं होता कि पूरी बात सुनें और समझें।

धर्म के सन्दर्भ में 'वर्ण' और 'आश्रम' को धर्म का आधार बनाया गया। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा – इसे मैंने बनाया है। भगवान ने 'धर्म' को मूल उद्देश्य बनाकर 'वर्ण' और 'आश्रम' की सृष्टि की। यह उन्होंने परस्पर सामंजस्य बनाने के लिये की या फिर विरोध और वैमनस्य पैदा करने के लिए? वेदमन्त्रों में भी इसकी व्याख्या हुई है –परमात्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैरों से शुद्र उत्पन्न हुए –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः। पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

वर्णों की तुलना शरीर के अंग-प्रत्यंगों से की गई। उसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि ये सारे अंग परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। वे परस्पर टकराते तो नहीं रहते। उनमें यह संघर्ष नहीं होता कि कौन ऊँचा है और कौन नीचा, कौन अच्छा है और कौन बुरा। जैसे ये सारे अंग-प्रत्यंग एक साथ समन्वित होकर हमें स्वस्थ रखते हैं, वैसे ही वर्ण-धर्म की भी रचना की गई, परन्तु उसका परिणाम किस रूप में हो गया, यह बात और है। उसके दुष्परिणाम भी हुए। लोगों ने इसका दुरुपयोग किया, लेकिन भगवान ने जब यह सूत्र दिया, तो इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति इस सत्य को हृदयंगम करे कि 'वर्ण' और 'आश्रम' धर्म समग्र रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए धर्म हैं।

भगवान श्रीराम ने अपने चरित्र के द्वारा, अपने आचरण के द्वारा, अपनी वाणी और व्यवहार के द्वारा कैसे सुन्दर सूत्र प्रस्तुत किये। आप विचार करके देखिए। भगवान श्रीराम को हम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मानते हैं और भगवान यदि यह मानते होते कि ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ है, तो वे हर बार ब्राह्मण वर्ण में ही अवतार लेते। वे सर्वश्रेष्ठ हैं, ईश्वर हैं, पूज्य हैं। पर वे कभी मछली के रूप में आते हैं, तो कभी कछुए, कभी वराह और कभी नृसिंह के रूप में भी आते हैं –

मीन कमठ सूकर नरहरी।
बामन परसुराम बपु धरी॥ ६/११०/७

इस अवतार में भी उन्होंने क्षत्रिय वर्ण में शरीर ग्रहण किया, तो यह तथ्य अपने आप में ही उनका बहुत बड़ा उपदेश है। और वह उपदेश यह है कि वस्तुतः वर्ण की श्रेष्ठता या निकृष्टता, यह धर्म के रहस्य को न जानने के

कारण है। एक वर्ण दूसरे वर्ण की निन्दा करे, एक वर्ग दूसरे वर्ग को दोष दे, यह लोगों की सहज प्रवृत्ति होती है। उसके पीछे कारण भी होता है। आप गहराई से देखें, यह एक बड़ी जटिल समस्या है कि जब दोषों की सूक्ष्म व्याख्या की जाती है, तो उस व्याख्या का व्यक्ति को जैसा उपयोग करना चाहिये, उसका वह ठीक उल्टा उपयोग करता है।

एक बार तो मुझे सुनकर थोड़ा आनन्द भी आया। एक प्रान्त के मुख्यमन्त्री मेरे कार्यक्रम का उद्‌घाटन करने आये। बड़े विनम्र थे। शुरू में ही बोले – मैं तो बहुत वर्षों से कथा में आता रहा हूँ। जब मुख्यमन्त्री नहीं था, तब भी आता था, पर मैं तो यही कह सकता हूँ कि यहाँ जो कुछ सुनता रहा हूँ, राजनीतिक जीवन में उसका उल्टा ही करता रहा हूँ। वे बोले – यहाँ तो बार-बार यह सुनाया जाता है कि दोष अपने और गुण दूसरों के देखना चाहिए। परन्तु हम लोगों का तो धन्धा ही यही है कि दूसरे में दोष और अपने गुण देखना।

तो यदि एक वर्ण दूसरे वर्ण को दोष ही देता रहे, निन्दा ही करता रहे, तो इससे बढ़कर दुर्भाग्य कुछ नहीं होगा। यदि कोई बुराई है, तो देखना होगा कि उस बुराई के मूल में हमारी क्या भूमिका है। यह रामायण महानतम ग्रन्थ है। आप उस पर प्रारम्भ से विचार करके देखें। प्रतापभानु का चरित्र आप सुनते रहे हैं। वहाँ पर भी एक महान सूत्र सामने आया। प्रतापभानु क्षत्रिय है, राजा है, उसने कपटमुनि के प्रलोभन में आकर ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। कपटमुनि बना हुआ कालकेतु मायावी है। उसने ब्राह्मणों को खिलाए जानेवाले भोजन में ब्राह्मण का मांस मिला दिया। माया के कारण वह सब अन्न जैसा प्रतीत हो रहा था। अन्न परोसे जाने पर अकाशवाणी हुई – आप लोग अपने-अपने घरों को चले जाइये, इस अन्न में बड़ा दोष है –

बिप्रवृन्द उठि उठि गृह जाहू।
है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू।। १/१७२/६

इन ब्राह्मणों ने भी वही भूल की – आधी बात सुनी और आधी नहीं सुनी। आकाशवाणी में कहा गया – 'इस भोजन में मांस है, इसे मत खाइए' – यह तो सुना, परन्तु उसके पहले जो वाक्य कहा गया, उस पर ध्यान नहीं दिया – आप लोग यहाँ से उठिए और अपने घरों को लौट जाइए –

बिप्रवृन्द उठि उठि गृह जाहू।।

यहाँ भी वही समस्या है; और वस्तुतः यह मानव स्वभाव की समस्या है। यदि ब्राह्मणों ने भगवान के वाक्य को पूरा-पूरा सुना होता, तो अन्न छोड़ चले जाते और आगे चलकर जो अनर्थ हुआ, वह नहीं हुआ होता। ब्राह्मणों को दूसरा वाक्य सुनते ही आवेश आ गया, क्रोध आ गया। उठकर घर जाने के आदेश को भुलाकर वे बोल उठे – अरे राजा, तू तो हमारे धर्म का विनाश करने पर तुला हुआ था, तूने बहुत बड़ा अनर्थ किया है; ईश्वर को धन्यवाद कि उसने हमारे धर्म की रक्षा की –

ईश्वर राखा धरम हमारा।। १/१७४/२

चलिए यहाँ तक भी ठीक है, पर यहीं रुक नहीं गये। बोले – ईश्वर ने तो हमारे धर्म की रक्षा की, पर तेरा सारे परिवार के साथ सर्वनाश हो जाएगा। तू सपरिवार राक्षस हो जाएगा। तेरा विनाश हो जाएगा –

जैहसि तैं समेत परिवारा।। १/१७४/२

यही अपूर्णता है। ब्राह्मणों ने भगवान की बात को पूरा सुना भी नहीं, उन्हें धन्यवाद भी दिया और आवेश में आकर राजा पर आरोप लगाते हुए कहा – अरे मूर्ख राजा, तूमने थोड़ा भी विचार नहीं किया। तुमने थोड़ा भी विचार किया होता, तो इतना बड़ा अनर्थ न हुआ होता –

बोले बिप्र सकोप तब
नहि कछु कीन्ह बिचार।। १/१७३

यह कितना बढ़िया सूत्र है, परन्तु फिर आकाशवाणी हुई और उसमें कहा गया – ब्राह्मणो, आप लोगों ने भी जो श्राप दिया, वह विचारपूर्वक नहीं दिया –

बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा।। १/१७३/५

यह एक बहुत बड़ा सूत्र है। इसका अभिप्राय यह है कि अविचार का उत्तर अविचार नहीं है, आवेश का उत्तर आवेश नहीं है, क्रिया का उत्तर केवल प्रतिक्रिया नहीं है। भगवान का अभिप्राय यह है कि यदि उसने विचारशून्य होकर कार्य किया; और यदि आप वेदविद् हैं, ज्ञान में प्रतिष्ठित हैं, तो आपको विचार करना चाहिए था। सही विचार तो यह होता कि आप लोग न्याय का कार्य मुझ पर छोड़ देते और अपने-अपने घर चले जाते। राजा ने जो अनर्थ किया है, उसका दण्ड उसे ईश्वर देता, परन्तु आप लोग न्यायाधीश बन बैठे। न्यायाधीश बनने के बाद भी आप लोगों ने राजा प्रतापभानु से यह नहीं पूछा कि तुमने

ऐसा क्यों किया। फिर राजा के अपराध पर उसके साथ-साथ उसके सारे परिवार को ही शाप दे डाला। तो आपके ये सारे कार्य क्या विचारपूर्ण हैं? इसमें सूत्र यह था कि जो व्यक्ति विचार या न्याय की पीठ पर बैठा हुआ है, यदि वह भूल करेगा, तो बहुत बड़े अनर्थ का कारण होगा।

अब वही समस्या खड़ी हुई। बेचारा राजा ब्राह्मणों के चरणों में गिर पड़ा और बताया कि इस-इस प्रकार यह स्थिति पैदा हुई थी। मैं तो जानता भी न था कि यह भोजन इस तरह का है। ऐसी स्थिति में मेरा तो कोई अपराध नहीं है। उस समय भी जो उत्तर दिया गया, वह तो बड़ा ही निष्ठुर था। ब्राह्मणों ने कहा – 'राजन्, तुम ठीक कहते हो। लगता है कि ऐसी ही भावी रही होगी, ऐसा ही प्रारब्ध रहा होगा। हमें समझ में आ गया कि तुम्हारा दोष नहीं है।' परन्तु अगले वाक्य में उन लोगों ने फिर सत्य की एक अनोखी व्याख्या कर दी। बोले – वह तो सब ठीक है, तुम दोषी भी नहीं हो, यही तुम्हारा प्रारब्ध होगा; परन्तु हम क्या करें, ब्राह्मण का वाक्य तो झूठा नहीं होता –

भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर।। १/१७४

यह तो बड़ी भयानक बात है। आप ब्रह्मास्त्र चलाना तो जानते हैं, परन्तु उसे लौटाना नहीं जानते। वही अश्वत्थामा वाली भूल! यदि आपने कोई भूल की है, तो आप उस भूल को लौटाने के लिए भी प्रस्तुत रहिए। अश्वत्थामा के सन्दर्भ में आप यही तो सुनते हैं। अर्जुन और अश्वत्थामा, दोनों ही ब्रह्मास्त्र के ज्ञाता हैं, पर दोनों में अन्तर यही है कि अर्जुन चलाना जानता है और लौटाना भी जानता है, जबकि अश्वत्थामा चलाना तो जानता है, पर लौटाना नहीं जानता। तो ब्राह्मणों का यह कहना कि 'हमारा वचन झूठ नहीं होगा', कोई बड़ी प्रशंसनीय बात नहीं है। मैंने देखा है कि कई लोग इस प्रसंग को पढ़कर मग्न हो जाते हैं, विद्वान ब्राह्मणों को कहते देखा है कि 'रामायण में लिखा हुआ है कि ब्राह्मण के मुँह से निकला हुआ शब्द झूठा नहीं हो सकता।' मैंने कहा – इसे पढ़कर आपको प्रसन्नता नहीं, अपितु दुःख होना चाहिए, क्योंकि इसका परिणाम कोई कल्याणकारी नहीं हुआ। उनका वचन तो सत्य हो गया, परन्तु इसका सबसे बड़ा दण्ड ब्राह्मणों को ही तो भोगना पड़ा!

ब्राह्मणों के श्राप से प्रतापभानु जब राक्षस बना, रावण बना, तो उसके मन में सबसे बड़ा विद्वेष ब्राह्मणों के प्रति ही था। जब रावण ब्राह्मणों और ऋषि-मुनियों का विनाश करता, तो यही कारण बताता था। जब हम अविचार का उत्तर अविचार से देते हैं, तो यही क्रिया और प्रतिक्रिया का चक्र शुरू हो जाता है। हमारे आवेश, हमारे आक्रोश से जो क्रिया होती है और उसकी जो प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, तब उसका परिणाम भी हमें ही भोगना पड़ता है। जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा, उसी को उसका परिणाम भी भोगना पड़ेगा। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि ऐसी भूल जब होती है, तो वह बड़ी घातक और बड़ी हानिकारक होती है। इसका मूल तत्त्व यह है कि ब्राह्मण तो श्राप देकर चले गये और उनका वचन भी सत्य हो गया। वह सब ठीक है। ब्रह्मास्त्र चलेगा, तो वह विनाश ही तो करेगा। उसमें जो शक्ति है, वह विनाश ही करने वाली है। पर इससे कितने दुर्भाग्य की स्थिति पैदा हुई? परिणाम यह हुआ कि प्रतापभानु का रावण के रूप में जन्म हुआ और उसके जीवन में यज्ञ के विरोध के रूप में, ब्राह्मणों के विरोध के रूप में जो आक्रोश दीख पड़ा, वह स्वाभाविक ही था।

अब भगवान श्रीराम की भूमिका पर यदि विचार करें, तो उन्होंने वर्णधर्म के सन्दर्भ में एक बड़ी विलक्षण व्यवस्था दी। आप गहराई से विचार करके उस पर दृष्टि डालें।

भगवान का एक अवतार – एक राम और भी हैं। वे भी भगवान के अंशावतार हैं। उनका जन्म तो ब्राह्मण वर्ण में ही हुआ है, परन्तु भगवान ने एक और अवतार क्षत्रिय वर्ण में लिया। इसमें सूत्र क्या है? यह कि उस युग में भी जैसी समस्याएँ थीं, वैसी ही इस युग में भी हैं। वही दुर्भाग्य है और वे ही समस्याएँ हैं। उस समय कोई भी समाधान नहीं दे पा रहा था। यहाँ तक कि परशुरामजी भी नहीं दे पा रहे थे, जिन्हें हम अंशावतार कहते हैं। उन्होंने समस्या के एक पक्ष को छूआ, पर जो समाधान दिया, वह पूर्ण समाधान नहीं था। उसका समाधान देने के लिए भगवान श्रीराम आये और स्वयं क्षत्रिय वर्ण में जन्म लेकर मानो वे बताना चाहते थे कि वर्ण का अर्थ यह है कि व्यक्ति अपने जीवन में वर्ण की श्रेष्ठता का अभिमान न पाल ले। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि हम वर्ण के धर्म का पालन कम करते हैं और वर्ण का अभिमान असंख्य-गुने मात्रा में स्वीकार कर लेते हैं। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (२९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अनुग्रहानन्द ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१०-७-१९६०

एक भक्त - यदि वह विवाह नहीं करती, तो अच्छा होता, सुख से रहती।

महाराज - एक प्रेमिक व्यक्ति मिलने से आदमी द्रवित हो जाता है। प्रेम करते-करते ही पहले स्त्री, उसके बाद पुत्र-पुत्री, इस प्रकार प्रेम की परिधि बढ़ती जाती है। बाद में यही परिष्कृत होकर, उन्नत होकर ईश्वर-प्रेम में परिवर्तित हो जाता है।

पहले अभ्युदय होना चाहिए – अपनी उन्नति, केवल अपनी उन्नति। उसके बाद जो व्यक्ति मेरे सामने रहता है, उसका और अपना विकास। इसके बाद सम्पूर्ण गाँव का विकास, इसी प्रकार पूरे देश के लोगों का कल्याण हो, ऐसी भावना से अपने में देशभक्ति, नैतिक अनुशासन, चरित्र, पवित्रता और निःस्वार्थता का विकास होगा। ये सब नहीं रहने से देशप्रेम नहीं होता।

विश्व के जितने प्राणी हैं, सबका कल्याण हो, यही सर्वश्रेष्ठ विचार है। किन्तु हम लोगों को इसके भी पार जाना होगा। हम लोग इसके पार जाकर देखेंगे कि जगत तो नित्यमुक्त है।

किसी ब्रह्मचारी ने कार्य करते समय कुछ गलती कर दी। महाराजजी सुनकर कहने लगे – ठाकुरजी कैसे अपने शिष्यों का ध्यान रखते थे। ऐसे तो वे कितना स्नेह करते थे ! किन्तु थोड़ी-सी भी गलती होने पर सुधार कराकर ही छोड़ते थे। बचपन और युवावस्था में सही मार्ग-दर्शक के सान्निध्य में नहीं रहने से जीवन विकसित नहीं हो सकता है। चारो ओर विभिन्न प्रकार के प्रलोभन हैं। शरीर और मन में कोटि-कोटि जन्मों के संस्कार हैं। कड़ी निगरानी में नहीं रहने से इसका अतिक्रमण कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है।

११-७-१९६०

महाराज - **प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।**
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।

- इसकी व्याख्या बहुत से लोगों ने अनेकों प्रकार से की है। किन्तु मैं समझता हूँ, कौन-सा कार्य कितना करना होगा और कितना नहीं करना होगा, उसका चिन्तन करना। हजारों रुपये व्यय करके मकान बना रहा है। किन्तु इधर जिस रास्ते पर दोनों समय चलता है, वह चलने के लायक नहीं रहा, उधर ध्यान नहीं है। इस प्रकार से विवेकहीन कार्य के द्वारा चित्तशुद्धि नहीं होती है।

जितना मन स्थिर होगा, उतना ही सूक्ष्म होगा और उतना ही बुद्धि-योग खुलता रहेगा। तब मन ही बता देगा कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि ददामि बुद्धि योगं – मैं बुद्धियोग देता हूँ। जितनी बड़ी समस्या क्यों न हो, श्रीमाँ एक सरल साधारण बातों से उसका समाधान कर देती थीं। जबकि वे निरक्षर थीं। महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ट्रस्टी-मीटींग में केवल एक-एक शब्द से ही सारी समस्याओं का समाधान कर देते थे।

प्रश्न - मेरा मन ध्यान में एकाग्र नहीं होता है। इसका अर्थ है कि मेरे अन्दर रजोगुण है। वह समाप्त नहीं होने से क्या ध्यान में मन नहीं लगेगा ? यदि हमारे भीतर वैसा ही हो रहा हो, तो क्या बहुत कार्य करना होगा ?

महाराज - नहीं, कम कार्य अच्छी तरह से करना होगा। **स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् –** थोड़ा सा किया गया धर्म – सत्कर्म भी महान संकट से बचा लेता है। मुझे लगता है कि प्रारम्भिक दस वर्षों तक प्रत्येक ब्रह्मचारी को यह बताना उचित है कि संन्यासी और गृहस्थ के कर्म एक जैसे नहीं हैं। क्यों संन्यासी बिना देखे-सुने, बिना समझे-बुझे और बिना विचार किए कार्य करेगा? वह संन्यासी है। उसका आत्मविकास का मार्ग उसका कर्म है। उसका कार्य उसकी उपासना होगी।

ठाकुरजी आ गए, हम लोग तैयार नहीं थे। हम लोगों में ध्यान-जप करने की शक्ति नहीं है और इस संघ में साधु-भाव से लगभग रह पा रहे हैं, यही हम लोगों के लिये बहुत है।

१४-७-१९६०

प्रश्न - हम लोग तो ठाकुरजी के नाम पर आ गये। क्या वे कृपा नहीं करेंगे?

महाराज - कोई-कोई कृपा-कृपा करके प्राण ले लेते हैं।

द्वैत भाव की दृष्टि से कृपा कहना पड़ता है। परन्तु कृपा का भी नियम है। कृपा कौन करेगा? वे तो जीव हुए हैं। मैंने श्रीमाँ से दीक्षा ली, उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया, श्रीमाँ कितनी प्रसन्न हुईं। किन्तु कहाँ, मुझे तो व्याकुलता नहीं हुई ! क्या श्रीमाँ के पास कृपा की कमी थी? उनकी कृपा तो थी ही। ठाकुरजी ने कहा कि कृपा की वायु प्रवाहित हो रही है, पाल उठा दो न ! यदि मेरी इच्छा है कि मैं इस जगत के रूप-रस का भोग करूँ, तो माँ वैसे व्यक्ति का क्या करेंगी? मेरी भोग से सन्तुष्टि हो जाने पर अपने आप ही व्याकुलता होगी और साथ-साथ उनकी कृपा का अनुभव करूँगा। ''नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम साध्य कभु नय। श्रवणादि शुद्ध चित्ते करये उदय।'' अर्थात् - नित्य सिद्ध कृष्णप्रेम कभी साध्य नहीं होता और श्रवणादि से शुद्ध-भक्ति में ज्ञानोदय होता है। यह वेदान्त का सार तत्त्व है। वेदान्त की वाणी चिर काल से है, किन्तु उसकी भाषा अलग है। श्रीचैतन्यदेव और ईसा मसीह ने एक ही बात कही है। साधना पद्धति भी सब एक ही है। किन्तु ठाकुरजी ने कहा है कि नहरनी से अपना गला काटा जा सकता है, परन्तु दूसरे को मारने के लिये ढाल-तलवार की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार वेदान्त की ठोस भाषा है। देखो, धर्म यथार्थ विज्ञान है। प्राकृतिक नियमों से होगा। तुम जैसा चाहोगे, ठीक वैसा ही पाओगे। इसमें किसी का आदेश नहीं है।

यह एक विराट जगत है। वर्ष-पर-वर्ष इसका गम्भीर रूप से चिन्तन नहीं करने से इसमें कितनी घटनायें हैं, कितना रहस्य है, उसका कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। साधु-जीवन का अर्थ दर्शन-फर्शन नहीं है, उसका अर्थ है - चरित्र-गठन।

१४-७-१९६०

प्रश्न - एक व्यक्ति हम लोगों के संघ में आया है। किन्तु उसके मन में कोई प्रश्न नहीं उठ रहा है। किन्तु सरल भाव से संघ की सेवा कर रहा है। इससे उसको क्या मिलेगा?

महाराज - यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।।

संन्यासी बनना है, तो अनात्म-संश्रव त्याग करना होगा। अनात्म का अर्थ है मैं - अस्तिमात्र, यह बोध छोड़ कर अन्य सभी वस्तु ही अनात्म-संश्रव है। अनात्म-संश्रव का ही पहला सोपान घर-द्वार त्याग करना है, दूसरा माता-पिता, भाई-बहन और तीसरा देश छोड़ना है। अन्त में इस देह-मन-बुद्धि के बन्धन से मुक्त होना है। इस शरीर में रहने से ही समस्या है। इस शरीर की प्रकृति काम, क्रोध और क्षुधा है। इन समस्याओं से परित्राण पाने के लिये, इन्हें छोड़ना होगा। शरीर का धर्म काम नहीं है, यदि होता, तो देह-धारण के साथ-साथ ही काम होता। विवेक-बुद्धि जाग्रत नहीं होने से कुछ भी नहीं होगा। तुम किसी की उपेक्षा और निन्दा नहीं कर सकते हो। उसका विवेक जाग्रत कर देने से ही वह अच्छा हो जाएगा।

बलपूर्वक कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। कर्म का बहुत विश्लेषण कर विचार-मन्थन करने के बाद कर्म-त्याग करने की कोशिश करनी चाहिये। 'योग: कर्मसु कौशलम्' – कर्म को योग में परिणत करना ही तो कौशल है। हम लोगों के संघ में प्रत्येक व्यक्ति एक-एक यन्त्र की तरह संघ की आज्ञा से कार्य कर रहा है। 'श्रुत्वाऽनेभ्य उपासते' - गुरु के मुख से सुन कर अभ्यास कर रहा है। हमारे संघ के सदस्य संघ की आज्ञा से ही कर्म कर रहे हैं। इस प्रकार कार्य करते-करते कर्म को सब प्रकार से देख लेने के बाद विवेक के जाग्रत होते ही एक-दो जन्मों में ही, किसी को इसी जन्म में ही मुक्ति हो जाएगी।

किसी का विवेक जाग्रत नहीं हुआ, इसलिये निन्दा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। छोटे बच्चे की मूँछ नहीं आने से क्या यह कोई हँसने की बात है? समय पर ठीक हो जाएगा। **(क्रमश:)**

सूरदास के पद और स्वामी विवेकानन्द

सूरदास जयन्ती विशेष

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ।।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन-अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो ।।
इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब दोनों मिलि एक बरन भए सुरसरि नाम परो ।।
इक जीव इक ब्रह्म कहावत सूरदास झगरो।
अब की बार मोहि पार उतारो नहिं प्रन जात टरो ।।

महान सन्त कवि सूरदास जी के उपरोक्त भजन से महान संन्यासी स्वामी विवेकानन्द की एक मर्मस्पर्शी घटना जुड़ी हुई है। स्वामीजी अपने परिव्रजन-काल में खेतड़ी, राजस्थान के महाराजा अजित सिंह के अतिथि थे। अजित सिंह जी ने एक नर्तकी की गायन-सभा में स्वामीजी को भी पधारने का सन्देश भेजा। स्वामीजी ने सेवक से कहला भेजा कि ऐसी सभा में संन्यासी का जाना अनुचित है। यह सुनकर गायिका अत्यन्त मर्माहत हो गई। उसने स्वामीजी को प्रत्युत्तर देने के बहाने ही सूरदासजी का यह भजन गाना आरम्भ किया। वाद्य-यन्त्रों के बीच नर्तकी के सुमधुर कण्ठ की ध्वनि सन्ध्या की निश्चल हवा को चीरकर स्वामीजी को सुनाई दी। स्वामीजी सुनकर अत्यन्त भाव-विह्वल हो गए। नर्तकी के भजन ने मानो स्वामीजी को सभी मानवों में विराजमान दिव्य सत्ता की स्मृति दिला दी। उन्होंने तुरन्त सभा में जाकर नर्तकी से भजन सुना। ○○○

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (४)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामाजी ने कलकत्ता में दिया था, इसका सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है।)

क्वचसम् प्रतिष्ठा: – हमारी प्रतिष्ठा कहाँ है? हमारा आधार कहाँ है? केन सुखेतरेषु वर्तामहे – सुख और दुख दो किनारों को छूती हुई, जो जीवन की नदी बह रही है, इसके बहने का क्या प्रयोजन है? हे ब्रह्मविदो ! आप लोग अपनी-अपनी दृष्टि से इन प्रश्नों के उत्तर दीजिए। श्वेताश्वतर उपनिषद का यह पहला मन्त्र है। उसके पश्चात् उसके उत्तर दिए गए हैं। तो सत्य को पाने का यह भी एक रास्ता है। प्रश्नोपनिषद में ऐसे ही प्रश्न किये गए हैं। उस सत्य को जानने की उपनिषद साहित्य में अलग-अलग विधियाँ हैं। यहाँ पर एक विशेष प्रकार की विधि है।

पहले हरेक उपनिषद में एक शान्ति पाठ होता है। शान्ति पाठ मन को उस विद्या के अनुकूल बनाने के लिए होता है। इसका अर्थ होता है कि जो उस मन्त्र में अर्थ है, उस अर्थ का चिन्तन करने से इन्द्रियाँ शान्त हो जाएँ, मन की लहरियाँ शान्त हो जाएँ, ताकि भीतर वह सत्य प्रतिभासित हो। जब मन शान्त होता है, तो इस शान्त मन में उस विद्या की झलक स्पष्ट पड़ती है, प्रेरणा तीव्र होती है। मन शान्त और एकाग्र होने से पैना, तीक्ष्ण होता है और पैना होने से परतों के भीतर में घुसता है। जब मन पैना हो जाता है, तो अपने भीतर घुसने की सामर्थ्य प्राप्त करता है। जब तक मन चंचल है, वह कहीं केन्द्रित नहीं होता है। जैसे आज हमारा मन चंचल है, तो भीतर की कौन कहे, बाहर ही नहीं टिकता है। किसी विषय में मन को लगाकर रखना चाहूँ, तो मन भाग जाता है। पर जहाँ भी मन केन्द्रित हो, वह उसका सार निकाल लेता है। यदि मेरा मन व्यवसाय में केन्द्रित होता है, तो व्यवसाय के जो सूक्ष्म सूत्र हैं, वे मेरे हाथ लग जाते हैं। यदि मेरा मन धन-अर्जन के साधनों में केन्द्रित होता है, तो वह जितना निविष्ट होगा, धन उपार्जन के साधन उतने ही मेरे सामने खुलते जाते हैं। यदि मेरा मन अन्य किसी विद्या में केन्द्रित होता है, यदि खगोल शास्त्र में मेरा मन केन्द्रित होता है, तो मानों उसके सारे रहस्य मुझे मालूम पड़ने लगते हैं।

यह मन विलक्षण है ! मन को एकाग्र करके आप जिस ज्ञान को प्राप्त करना चाहें, वह पा सकते हैं। लौकिक विद्या में, किसी सामान्य विद्या में, सांसारिक विद्या में यदि एकाग्र करें, तो यह संसार की विद्या अधिगत होगी और यदि आप अन्य किसी विद्या में इसे एकाग्र करें, तो वह विद्या आपके हाथ लगेगी। जिसका मन चंचल है, स्थिर नहीं बैठता है, न संसार में बैठता है, न कहीं अध्यात्म में बैठता है, ऐसा व्यक्ति सफल नहीं होता है। भौतिक सफलता प्राप्त करने के लिए भी मन की एकाग्रता चाहिये। यहाँ शान्ति पाठ में अध्यात्म का सूत्र, साधना का सूत्र दिया गया है।

यह उपनिषद सामवेद के अन्तर्गत तलवकार शाखा में आती है। यह है तो छोटा-सी, परन्तु ईशावास्योपनिषद से बड़ी है। इसमें कथा के माध्यम से तत्त्व का विवेचन किया गया है। इसमें मुख्य ध्वनि आती है – अहंकार का नाश करो, अहंकार का नाश करो। अहंकार रहने से सामने साक्षात् ब्रह्म यक्ष के रूप में खड़ा है, किन्तु समझ में नहीं आता, कौन है? ऐसा इसमें कहा गया है। देवताओं के मन में अहंकार था, इसलिए जिस तत्त्व को वे पाना चाहते थे, जिसका वे दर्शन करना चाहते थे, वह सामने यक्ष का रूप धारण करके खड़ा है, फिर भी वे नहीं पहचान पा रहे हैं। अहंकार का पर्दा पहचानने नहीं देता। यदि सामने भगवान भी आ जाएँ, तो अहंकार के पर्दे में दिखाई नहीं पड़ता है। भगवान विशिष्ट हैं ! वे निरहंकारी के समक्ष प्रगट होते हैं। शान्ति पाठ में कहा गया है –

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्तु अनिराकरणं मे अस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।। ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ऐसा शान्ति पाठ इस उपनिषद में किया गया है। इस शान्ति पाठ का क्या अर्थ है? आप्यायन्तु... – ॐ से, ईश्वर के नाम से यह सब शुरू होता है। प्रभु के नाम का स्मरण ॐ बड़ा सार्थक है। इसका विवेचन हम एक बार कर चुके हैं, पुनः विवेचन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ब्रह्म का, ईश्वर का प्रतीक है यह ओंकार। ईश्वर का वाचक क्या है? पतंजलि कहते हैं – **तस्य वाचकः**

प्रणवः । उस परम सत्य का वाचक है यह ओंकार । ऋषि यहाँ प्रार्थना कर रहे हैं। शिष्य-गुरु दोनों मिलकर यह प्रार्थना कर रहे हैं कि मेरे अंग पुष्ट हों। पुष्ट हों किसके लिये? क्या संसार के भोगों का भोग करने के लिये? नहीं, साधना करने के लिए शरीर पुष्ट हो। यदि अंग पुष्ट न हों, तो साधना कहाँ हो पाती है? यदि रोग जर्जरित हमारी देह हो, तो साधना में मन नहीं लगता है। इसलिए कहते हैं, मेरे अंग पुष्ट हों, क्योंकि मैं उस सत्य को पाने का उपाय करना चाहता हूँ, साधना करना चाहता हूँ। फिर कहते हैं – वाक्प्राणश्चक्षुः...वाणी, प्राण का जो स्पन्दन हो रहा है, वे आँखें, कान, बल और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पुष्ट हों। बल का अर्थ है तेज, मन की दृढ़ता। मेरा मनोबल पुष्ट हो। मनोबल यदि पुष्ट न हो, तो साधना में हम बढ़ नहीं पाते। थोड़ा-सा कुछ व्यवधान आया, तो हम लड़खड़ा जाते हैं, आगे बढ़ने की इच्छा नहीं होती है, क्रम टूट जाता है। इसलिए कहा गया कि मेरा मनोबल बढ़े। और क्या हो? – सर्वम् ब्रह्मोपनिषदम्... यह सब कुछ वह औपनिषद ब्रह्म है। औपनिषद ब्रह्म का क्या तात्पर्य है? जो ब्रह्म, जो सत्य, उपनिषद शास्त्र से, उपनिषद की प्रणाली से प्राप्त होता है। उपनिषद की प्रणाली से मतलब गुरु और शिष्य की परम्परा से प्राप्त होता है। गुरु के पास जाकर शिष्य विनीत होकर ब्रह्मविद्या प्रदान करने के लिए प्रार्थना करता है। यह सब कुछ औपनिषद ब्रह्म है। फिर माहं ब्रह्म.. – मैं ब्रह्म की अवहेलना न करूँ, सत्य की अवहेलना न करूँ और यह सत्य भी मेरी अवहेलना न करे। यदि कभी मुझसे गलती होती है, मैं प्रमाद भी कर बैठता हूँ, तो वह सत्य मुझ पर कृपा करे। वह कभी भी मेरा किसी भी प्रकार से तिरस्कार न करे। हम परस्पर एक दूसरे का आलम्बन लेकर आगे बढ़ते चलें। तदात्मनि... उपनिषदों में जो धर्म हैं, जिनकी बात कही गयी है, जिन धर्मों के सहारे अध्यात्म के क्षेत्र में आगे बढ़ा जाता है, वे सारे के सारे धर्म मुझमें आ जाएँ, मेरे भीतर हों। अन्त में त्रिविध ताप की शान्ति की प्रार्थना की गयी है। यहाँ से केनोपनिषद शुरू होता है। इसके बाद भगवत् पूज्यपाद शंकराचार्य जी के द्वारा केनोपनिषद की महत्ता बतायी गयी है। आपको दो भाष्य मिलेगें। एक तो पदभाष्य है, जैसे हर उपनिषद में पद-भाष्य होता है और दूसरा उसके साथ-साथ उसका वाक्य-भाष्य है। इस उपनिषद की यह विलक्षणता है । केवल इसी में आद्यशंकराचार्य जी के द्वारा दो भाष्य किये गए हैं। पद का अर्थ है – जो श्लोकों के पद हैं, शब्द हैं, उनका अर्थ, उनका भाष्य, उनका विवेचन। फिर स्वतन्त्र रूप से वाक्य-भाष्य भी है। मानों वहाँ पर पद के साथ अधिक सम्बन्ध नहीं है, पर क्या तथ्य है, क्या कहा गया है, इसको लेकर के उन्होंने स्वतन्त्र तर्क के आधार पर, तर्क प्रणाली से पूर्व पक्ष, उत्तर पक्ष के द्वारा खण्डन-मण्डन किया है। शंकराचार्य पूर्व पक्ष में आएँगे, दर्शन के क्षेत्र में प्रश्न उठाएँगे और फिर उसका खण्डन करके अपने मत का पोषण करेंगे। वे वाक्य-भाष्य के माध्यम से, उस प्रणाली का दर्शन कराते हैं और पद भाष्य में मानो तत्त्व का बोध कराते हैं। जो शब्द हैं, उनका अर्थबोध कराते हैं। तो शंकराचार्य जी ने इस उपनिषद में दो भाष्यों की रचना की है। इस दृष्टि से भी केनोपनिषद का अपने आप में अधिक महत्व कहा जा सकता है।

प्रथम मन्त्र का उच्चारण कर हम अपनी वाणी को विराम देते हैं –

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।१।।

यहाँ शिष्य बैठा है, ऐसा लिखा नहीं है, पर लगता है शिष्य आया है और गुरु के समक्ष प्रणत होकर प्रश्न कर रहा है – भगवन् ! मेरे मन में यह प्रश्न उठता है कि यह मन अपने विषयों की ओर किसकी इच्छा से जाता है? क्या कोई इच्छा करता है? क्या कोई उसे भेजता है? क्या कोई उसे पढ़ाता है? तभी तो यह जाता है। यह प्राण किसकी प्रेरणा से प्रथम स्पन्दित होता है? अपने भीतर प्राणों का स्पन्दन क्यों होता है? यह धौंकनी क्यों चलती है और क्यों बन्द हो जाती है, जिससे एक दिन मनुष्य मृत्यु के कराल गाल में समा जाता है? धौंकनी के पीछे प्रेरणा किसकी है? किसकी प्रेरणा से आँखें देखती हैं? जब मैंने इच्छा नहीं की थी, तब भी आँखें देख रही थीं। जब मैं छोटा था, शिशु था, तब मैं देखने की इच्छा थोड़े ही कर रहा था। आँखें खुलीं तो दिखाई देता है। क्यों मन इधर-उधर जाता है? ऐसे समय का विचार करके शिष्य प्रश्न करता है कि कौन मन को पदार्थों में, विषयों में विचार करने के लिये भेजता है? किसकी प्रेरणा से प्राण स्पन्दित होते हैं, वाणी बोलती है? किसकी इच्छा से, कान और आँखें अपना अपना कार्य करते हैं। इस प्रश्न का जो उत्तर केनोपनिषद में दिया गया, उसके उत्तर पर अगले तीन दिनों तक आपके समक्ष विचार करेंगे। आज यहीं पर वाणी को विराम देते हैं, हरि ॐ तत् सत्। **(क्रमशः)**

५१. नकटा साधु-सम्प्रदाय

वर्तमान लेखक ने एक बार इन सन्त (गाजीपुर के पवहारी बाबा) से पूछा था कि संसार की सहायता करने के लिए वे अपनी गुफा से बाहर क्यों नहीं आते। पहले तो उन्होंने अपनी स्वाभाविक विनयशीलता तथा विनोदप्रियता के अनुरूप निम्नलिखित स्पष्ट उत्तर दिया –

"एक दुष्ट व्यक्ति एक बार कोई दुष्कर्म करते हुए पकड़ा गया और दण्ड के रूप में उसकी नाक काट ली गयी। वह अपना नकटा चेहरा लोगों को दिखाने में लज्जा का अनुभव करता हुआ हताश होकर एक जंगल में भाग गया। वहाँ उसने एक सिंह की छाल बिछा ली और उसे जब भी किसी के आने की आहट मिलती, वह उस पर बैठकर गहरे ध्यान में डूबे होने का दिखावा करने लगता। ऐसा करने से वह लोगों को दूर तो नहीं रख सका, बल्कि उलटे इस अद्‌भुत महात्मा को देखने तथा उसकी पूजा करने के लिए लोग दल-के-दल आने लगे। उसने देखा कि यह वनवास तो उसके लिए एक बार फिर जीवन-निर्वाह का एक सहज साधन बन गया है।

"इसी प्रकार कई साल बीत गये। आखिरकार वहाँ के निवासी इन मौनी ध्यान-परायण सन्त के मुख से कुछ उपदेश सुनने के लिए उत्सुक हो उठे; और एक युवक तो उन 'सन्त' के सम्प्रदाय की दीक्षा लेने के लिए विशेष रूप से व्याकुल हो उठा। परिस्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि जरा भी विलम्ब करने से साधु की प्रतिष्ठा खतरे में पड़ जाती। एक दिन सन्त ने अपना मौन तोड़ा और उस उत्साही युवक से बोला कि अगले दिन वह अपने साथ एक तेज धारवाला छुरा लेता आए। अपने जीवन की महान आकांक्षा की शीघ्र ही पूर्ति की सम्भावना से वह युवक बड़ा आनन्दित हुआ और अगले दिन सबेरा होते ही वह एक छुरा लेकर वहाँ आ पहुँचा। नकटा साधु उसे साथ लेकर जंगल के बहुत निर्जन स्थान में ले गया। वहाँ उसने छूरे को हाथ में लेकर उसे खोला और एक ही आघात में युवक की नाक काट ली और गम्भीर स्वर में बोला, "वत्स, इस सम्प्रदाय में मेरी भी दीक्षा इसी प्रकार हुई थी। वही आज मैंने तुम्हें भी प्रदान की है। मौका पाते ही तू भी निष्ठापूर्वक दूसरों को इसी प्रकार से दीक्षा देते रहना!" लज्जा के कारण वह युवक किसी के भी समक्ष अपनी इस अद्‌भुत दीक्षा का रहस्य प्रकट नहीं कर सका और अपनी पूरी क्षमता के साथ अपने गुरुदेव के आदेश-पालन में जुट गया। इस प्रकार नकटे साधुओं का एक पूरा सम्प्रदाय ही क्रमश: पूरे देश में फैल गया। क्या तुम मुझे भी इस तरह के किसी सम्प्रदाय का संस्थापक बनाना चाहते हो?"

बाद में, एक दिन गम्भीर मनस्थिति में दुबारा यही प्रश्न पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया था, "क्या तुम सोचते हो कि केवल स्थूल शरीर द्वारा ही दूसरों की सहायता की जा सकती है? क्या शरीर के क्रियाशील हुए बिना, केवल मन के द्वारा ही अन्य मनों की सहायता नहीं की जा सकती?" (९/२६८)

५२. सीपी के समान मुक्ता का निर्माण करो

भारत में एक सुन्दर कथा प्रचलित है। कहते हैं कि जब आकाश में स्वाति नक्षत्र का योग हो और उस समय होने वाली वर्षा की एक बूँद किसी सीपी के मुख में पड़ जाय, तो वह बूँद मोती बन जाती है। सीपियों को यह बात मालूम है। अत: जब उस नक्षत्र का उदय होता है, तो सीपियाँ पानी की सतह पर आकर तैरने लगती हैं और वर्षा की उस मूल्यवान बूँद को पाने के लिये प्रतीक्षा करती रहती हैं। वह बूँद पाते ही वे अपना मुख बन्द कर लेती हैं और डुबकी लगाकर समुद्र के तल में पहुँच जाती हैं। वहाँ वे बड़े ही धैर्यपूर्वक उस बूँद को मोती में विकसित करती हैं।

हमें भी उन्हीं के समान बनना होगा। पहले श्रवण करना होगा, फिर (मनन के द्वारा) समझना होगा और अन्तत: मन को संसार के बाह्य प्रभावों से मुक्त करके, अपने भीतर निहित परम तत्त्व को विकसित करने के कार्य में जुट जाना होगा। केवल नयेपन के कारण किसी एक भाव को ग्रहण करना और उसकी नवीनता का आकर्षण चले जाने पर, उसे छोड़कर किसी अन्य नये भाव को पकड़ना – ऐसा करने से हमारी शक्तियों के बिखरकर निरर्थक नष्ट होने की आशंका है।

एक भाव को पकड़ो और उसी में अपना मन-प्राण लगा दो। उसका अन्त तक अनुसरण करो, अन्त देखे बिना उसे मत छोड़ो। जो व्यक्ति एक भाव को लेकर उसी में उन्मत्त हो सकता है, वही सत्य का आलोक देख सकेगा। जो लोग थोड़ा इधर, तो थोड़ा उधर, हर विषय में मुँह मारते रहते हैं, वे कभी कोई उपलब्धि नहीं कर सकते। उन्हें अपनी नसों की उत्तेजना के रूप में थोड़ी देर के लिये कुछ आनन्द भले ही मिल जाय, किन्तु उसका कोई स्थायी फल नहीं होगा। वे यथावत् प्रकृति के दास बने रहेंगे और कभी इन्द्रियों के ऊपर नहीं उठ सकेंगे। जिन्हें सचमुच ही योगी बनने की इच्छा हो, उन्हें थोड़ा-थोड़ा हर चीज को पकड़ने का भाव सदा के लिये छोड़ देना होगा।

एक विचार लो। उसी को अपना जीवन बनाओ। उसी का चिन्तन करो। उसी का स्वप्न देखो और उसी में जीवन बिताओ। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु, शरीर के सारे अंग उसी विचार से पूर्ण रहें। दूसरे सारे विचार छोड़ दो। यही सिद्ध होने का उपाय है; और इसी उपाय से बड़े-बड़े धर्मवीरों की उत्पत्ति हुई है। बाकी सभी तो केवल बातें करने वाले यन्त्र मात्र हैं। यदि हम सचमुच ही कृतार्थ होना और दूसरों का उद्धार करना चाहें, तो हमें गहराई तक उतरना होगा। (१/८९-९०)

साधक-जीवन कैसा हो? (४)

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

एक महिला जिनको बहुत निकटता से मैं जानता हूँ। वे बहुत बड़े शासकीय पद पर हैं। अभी वे ५८ वर्ष की हो रही हैं। दुर्भाग्यवश डेढ़ वर्ष पहले उनके पति की मृत्यु हो गयी। उनकी कोई सन्तान नहीं है। वे जिस पद पर कार्यरत हैं, उनको ९ लाख रुपये वेतन मिलता है। नौकर-चाकर, गाड़ी, सम्मान, पद सब कुछ उन्हें प्राप्त है। उनके पति भी बड़ी नौकरी में थे। जब उनके पति की मृत्यु हुई, तो उन्हें पति का जो कुछ प्राप्तव्य था, वह सब लगभग करोड़-दो करोड़ रुपया मिला। सब कुछ टैक्स देने के बाद एकदम शुद्ध पैसा बचा। मुझे दुख हुआ कि बेचारी अकेली विधवा हो गयीं। उसके बाद मैं अभी इसी महीने में इंदौर गया था। एक दूसरी बच्ची मुझसे मिलने आयी। उस बेटी से मैंने पूछा कि बेटी वे कैसी हैं? वह उनकी बहुत निकट की सम्बन्धी ऐसा कुछ है। वह कहने लगी – बाबा क्या बताऊँ आपको ! एक दिन उन्होंने मुझे बुलाया । उन्होंने अपने भाई को भी बुलाया और जौहरी की दुकान में गयीं। अब सोचिये, ज्वेलर की दुकान में विधवा ! वह भी लगभग ६० वर्ष की उम्र में ! मैं निन्दा नहीं कर रहा हूँ। माताएँ तो मेरे लिये पूजनीय हैं। वह बच्ची देखने में गोरी, पर हँसती नहीं है। वे हथिनी की तरह इतनी मोटी कि वजन तौलने की मशीन ही टूट जाय। ज्वेलरी की, गहने की दुकान में जाकर उन्होंने अपने पुराने गहने बदल दिये। पति तो चले गये यमराज के यहाँ। जो पैसा मिला उससे उसी तरह के हीरे आदि के नये जेवर खरीद लिए। न केवल खरीदकर लायीं, बल्कि पहन लीं। उस दूसरी लड़की ने उनसे कहा – चाची या भाभी या दादी या नानी, जो भी कहा हो, आप इतने बड़े पद पर हैं, जब आप इन गहनों को पहनकर ऑफिस में जाएँगी, तो आपके कर्मचारी लोग क्या कहेंगे? उन्होंने कहा – मैं इसे पहनकर रोज तो ऑफिस में शायद नहीं जा सकूँगी। उन्होंने जौहरी से कहा हमको महिलावाली हीराजड़ित यह अंगुठी ही दे दो। ऐसा किसी के साथ भी हो सकता है। किन्तु आप सोचें कि हीरे जवाहरात के गहनों ने हमें कहाँ पहुँचा दिया ! अभी शरीर स्वस्थ है, भोजन से तृप्ति है, प्रोटीन आदि सब मिलता है, सारी सुविधाएँ हैं, सम्पन्नता और पद है, तो भी सन्तोष नहीं है, हम तृप्त नहीं हैं। प्रभु-कृपा से आप सब लोग यहाँ हैं। आप सबको रोटी, कपड़ा, मकान की चिन्ता नहीं है। प्रभु ने आपके खाने-पीने की सब व्यवस्था कर रखी है। दूसरी सुविधाओं का प्रबन्ध है। सन्तानों का विवाह हो गया है, या होने वाला है। उनकी पढ़ाई-लिखाई हो चुकी है । सामान्यत: संसार की दृष्टि से जिसको लोग कहते हैं कि सेटल हो गये हैं। तो अब जितने में हैं, उससे सन्तुष्ट होकर थोड़ा साधक-जीवन की ओर ध्यान दीजिये। बहुत अधिक सेटल होने की आकांक्षा भी ठीक नहीं है। यह सेटल होना बड़ा खतरनाक शब्द है। यह हमें निरन्तर छलता रहता है। ब्रह्माण्ड में आकाश के सिवाय कुछ भी सेटल नहीं है। मगर हम सेटल होना चाहते हैं। जीवन से भगवान को हटाकर हम एकदम वेल सेटल हो गये हैं ।

कल मेरे एक बहुत घनिष्ठ मित्र मिले थे। मैंने उनकी कन्या के बारे में पूछा। वे बोले – महाराज, मेरी लड़की ने कहा कि उसके विवाह का प्रबन्ध हो गया है। लड़का चरित्रवान और बहुत अच्छा है। मेरा बहुत अच्छा मित्र है। मुझे बहुत अच्छा लगा। उन्होंने कहा – अरे महाराज ! उसने ही सेटल कर लिया। मैंने कहा – अरे तू बहुत भाग्यवान है ! उन्होंने कहा – हाँ, मैंने उसकी माँ को भी समझा दिया है। मैंने कहा, सब ठीक है, तो अच्छी बात है। कम-से-कम उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की, नाराज नहीं हुए। नहीं तो, कितने लोग हैं, जो कहते हैं – लड़के को देख लेंगे, लड़के को गोली मार देंगे आदि व्यर्थ

प्रलाप करते रहते हैं। उन्होंने सहजता से कहा – हाँ महाराज, झंझट से बच गए। वे लोग सेटल हो गये, अच्छा हुआ। एक यह भी सेटल होना है। तो अब सब लोग इतने सेटल तो हैं ही।

साधक या साधिका को यह देखना चाहिये, विचार करना चाहिये कि यदि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति उनके जीवन स्तर के अनुसार हो रही है, तो उसको अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। साधक का जीवन बिताना हो, तो हमें यह निश्चय पहले करना पड़ेगा कि हम जहाँ हैं, जिस परिस्थिति में हैं, वहीं से साधना शुरू कर देंगे।

लेकिन हमारी कठिनाई कहाँ होती है? हमारी कठिनाई हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा को लेकर होती है। हम अपने सामाजिक व्यक्तित्व को लेकर चिन्तित और व्यस्त रहते हैं। यह सामाजिक व्यक्तित्व बहुत खतरनाक होता है। थामस केम्पिस, इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट में कहते हैं – लोकप्रिय होने की इच्छा, बहुत सामाजिक होने की इच्छा, यह वृत्ति आध्यात्मिक आत्महत्या है। आध्यात्मिक मृत्यु भी होती है। कभी आप सोचकर देखें, तो पायेंगे कि आपके घर की या भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो गयी है, आपकी पारिवारिक कोई समस्या नहीं है, आप प्रसन्न हैं। किन्तु आपका सामाजिक व्यक्तित्व आपकी आध्यात्मिक साधना में बाधा देता है। यह कैसे बाधा देता है, इस पर चर्चा बाद में होगी।

दूसरा प्रवचन

कल के सत्र में हमने मानव व्यक्तित्व के दो प्रकारों पर थोड़ी-सी चर्चा की थी। हमने देखा कि साधकों और विद्वानों ने मानव व्यक्तित्व के प्रमुख दो भाग किये हैं। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि मानव व्यक्तित्व Multi-dimensional – बहुआयामी है।

मानव व्यक्तित्व के प्रमुख दो आयाम हैं – अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और बहिर्मुखी प्रवृत्ति। बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कुछ लक्षणों पर हमने कल चर्चा की थी। उन लक्षणों के द्वारा हम अपने स्वयं को अर्थात् अपने मन को समझ सकेंगे। जिस दिन हम स्वयं को जान लेंगे, उस दिन सर्वसिद्ध हो जाएँगे। तभी हम अपने मन को ठीक-ठीक समझ सकेंगे। अभी हमारा मन अधिकांश बहिर्मुखी है, अत: हम विशेष रूप से बहिर्मुखी आयाम पर थोड़ी चर्चा करेंगे।

आपके हमारे जीवन में अनेकों अनुभव हैं, कह सकते हैं कि अनन्त अनुभव हैं। मनुष्य के मन में अनन्त इच्छाएँ, कामनाएँ और वासनाएँ हैं **– बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयो अव्यवसायिनाम्** – (गीता २/४१)।

मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई या असफलता साधक जीवन के विषयों की है। कृपया ध्यान रखें, साधक का जीवन कैसा हो, उसे केन्द्र करके यह चर्चा हो रही है। हम अनुभव भूल जाते हैं। किसी भी आध्यात्मिक अनुभव या ईश्वर के अनुभव को छोड़कर, जगत में जो भी अनुभव हमको होते हैं, वे सभी अनुभव इन्द्रियगम्य हैं। इसमें बुद्धि भी सम्मिलित है। आध्यात्मिक अनुभव इन्द्रियातीत होता है, वह कभी इन्द्रियों से नहीं होता। वह किससे होता है, उसका अनुभव करने वाला ही जानता है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है – शुद्ध बुद्धि, शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा एक है। सामान्य अवस्था में हमारा अनुभव पंचेन्द्रियों से होता है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। स्वादिष्ट वस्तु को जब जिह्वा से चखेंगे, तभी उसके स्वाद का पता चलेगा। अगर स्वर्ग का अमृत भी हो और उस अमृत में हम आप डूब भी जायँ, किन्तु जिह्वा उसका स्पर्श न कर सके, तो उसका स्वाद क्या है, हम जान नहीं सकेंगे। उसे जिह्वा से स्पर्श करने के बाद ही हम उसका स्वाद जान सकेंगे। कोई वस्तु कितनी सुगन्धित या दुर्गन्धियुक्त है, अगर हम अपनी नाक बन्द करके उसमें डूबे भी रहें, तो हमें पता नहीं लगेगा। नाक के द्वारा ही हम गन्ध का अनुभव कर सकते हैं। गन्ध की तन्मात्राएँ होती हैं, जिसका अनुभव नाक ही कर सकती है। कोई वस्तु कड़ी है, नरम है, ठण्डी है या गरम है, इसका अनुभव हम किसी वस्तु के स्पर्श किये बिना नहीं कर सकते, इसे स्पर्श-इन्द्रिय द्वारा ही हम जान पाते हैं। यह स्पर्श-इन्द्रिय का सुख अत्यन्त भयंकर है। प्रारम्भ में **'अमृतोपम परिणामे विषमिव'** – पहले अमृत के समान लगता है, किन्तु परिणाम में विष जैसा होता है। पहले व्यक्ति को बहुत अच्छा लगता है, किन्तु बाद में बहुत दुख देता है। **(क्रमश:)**

भारत की सांस्कृतिक यात्रा : रुद्र से शिव तक

डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा

प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

(गतांक से आगे)

इसी प्रकार 'पशुपति' शब्द का अभिप्राय भी बदल गया है। मैक्डॉनैल के अनुसार रुद्र का आक्रमण खुले में विचरण करने वाले पशुओं पर अधिक होता था, अतः ऐसे पशुओं को उनके ही संरक्षण में छोड़ दिया जाता था और प्रार्थना की जाती थी कि वे उनकी रक्षा करें। कालान्तर में जब शिव की प्रतिष्ठा ईश्वर के रूप में हुई, तो उन्हें केन्द्र में रखकर विशाल शैव धर्म और दर्शन का विस्तार हुआ, जिसमें 'पशुपति' शब्द का अर्थ ही बदल गया। शैव दर्शन में 'पशु' का अर्थ है – 'जीव' और 'पशुपति' का अर्थ है जीवों के स्वामी अर्थात् परमात्मा शिव। ऋग्वेद में रुद्र के धनुष और तीव्र बाणों का बारम्बार उल्लेख है, किन्तु शिव ने धनुष बाण छोड़कर त्रिशूल हाथ में ले लिया है, यद्यपि उनके 'पिनाकी' नाम से धनुष से भी उनका सम्बन्ध सूचित होता है। पिनाक उनके धनुष का नाम है, जिसका उपयोग उन्होंने सम्भवतः अर्जुन की परीक्षा लेने के लिये किरात वेश में उससे युद्ध करने के लिये किया होगा। बाद में तो यह पिनाक महाराज जनक के यहाँ रखा रहा, जहाँ 'सीता स्वयंवर' में रामजी ने इसे तोड़ा – '**छुअतहिं टूट पिनाक पुराना**'।

यह ध्यान देने योग्य है कि शिव के व्यक्तित्व में रुद्र का निषेधात्मक पक्ष गौण हो गया है और सकारात्मक पक्ष कृपा, करुणा और लोकमांगल्य के साथ जुड़कर उभर आया है। उदाहरण के लिये रुद्र का क्रोध शिव में कभी-कभी ही दिखलाई पड़ता है। वह भी करुणासंवलित रूप में। मदनदहन का आख्यान इसका उदाहरण है, जब समाधि में विघ्न डालने के कारण वे अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से उसे भस्म कर देते हैं। किन्तु यह क्रोध भी करुणा में ही पर्यवसित होता है, जब वे रति को पुनः अपने पति से संयोग का वरदान देते हैं। विद्वज्जन इस आख्यान की आध्यात्मिक व्याख्या भी करते हैं। शिव का तृतीय नेत्र ज्ञानाग्नि का प्रतीक है, वे उस ज्ञानाग्नि से अपने भक्तों के अज्ञान और क्षुद्र वासनाओं को भस्म करते हैं। अनुचित आचरण पर दण्ड और फिर कृपापूर्वक क्षमादान का ऐसा ही एक उदाहरण रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में आया काकभुशुण्डि का आख्यान है।

रुद्र के विनाशकारी स्वरूप की एक झलक शिव के प्रलयंकर रूप में मिलती है, जब वे सृष्टि का संहार करते हैं; किन्तु यह विनाश रुद्र के द्वारा किये गए विनाश से बहुत भिन्न है। यह व्यक्तिगत मात्सर्य या अप्रसन्नता के कारण दिया गया दण्ड नहीं है, यह सृष्टिलय की स्वाभाविक प्रक्रिया है। सनातन धर्म में 'त्रिमूर्ति' की अवधारणा है, जहाँ परब्रह्म परमात्मा ही ब्रह्मारूप से जगत की सृष्टि करता है, विष्णुरूप से सृष्टि का पालन करता है और शिवरूप से उसका संहार करता है। सृष्टि के कण-कण में प्रतिक्षण सृजन और संहार का यह क्रम चलता रहता है, यही प्रकृति का स्वरूप है। सृष्टि का संहार करते समय भी शिव क्रोधोन्मत्त नहीं हैं, ताण्डव नृत्य करते समय भी वे आत्मलीन हैं। सृष्टि का कण-कण उनकी तेजस्वी शक्ति से ओतप्रोत है, इस शक्तिमण्डल के मध्य वे ताण्डव-नृत्य करते हैं। सृष्टि में निरन्तर गतिमान उत्पत्ति और विनाश के बीच भारतीय मनीषा ने एक अद्भुत आध्यात्मिक बिम्ब की सृष्टि की है, और वह है 'नटराज' शिव का बिम्ब। शिव की नटराज मूर्ति अपने आप में एक पूरा दर्शन समेटे है। उनके उठे हुए दक्षिण हस्त में ढक्का या डमरू है, जो अनाहत नाद का प्रतीक है। वामहस्त में ली हुई अग्नि-ज्वाला शुद्धि और परिवर्तन की सूचक है। इनके मध्य में स्थित शिव का मुख शान्त है, नेत्र बन्द हैं। मुख पर करुणा का भाव है। दूसरा दक्षिण हस्त अभयमुद्रा

में है, जो रक्षा का आश्वासन दे रहा है और दूसरा वामहस्त उनके उठे हुए दक्षिण चरण की ओर संकेत कर रहा है, जो माया से मुक्ति का प्रतीक है। उनका बाँया चरण जीव पर स्थित है, जो यह सूचित करता है कि परमात्मा शिव के चरणों में आत्मसमर्पण ही जीव की मुक्ति का साधन है।

आधुनिक भौतिक शास्त्र इसी सत्य को अपनी विशिष्ट शब्दावली में व्यक्त करता है कि पदार्थों में होने वाला चयापचय उन अणुओं, परमाणुओं की छन्दमय गति के कारण होता है, जिनका उद्‌भव और विघटन स्वयं हुआ करता है। यह छन्दमय आवर्तन या विद्युत् स्पन्दन ही पदार्थ के अस्तित्व को धारण करता है। इस प्रकार भौतिक शास्त्र शिव के नृत्य को परमाणुओं के आवर्तन में देखता है और अध्यात्मशास्त्र परमाणुओं के विद्युत-स्पन्दनों में शिव के नृत्य को।

भारतीय संस्कृति की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है जीवन को उसकी सम्पूर्णता में स्वीकार करना। वह जानती है कि यह भौतिक सृष्टि द्वन्द्वात्मक है, यहाँ पदार्थ और परिस्थितियाँ एक दूसरे के विपरीत होते हुए भी परस्पर नद्ध हैं, गुँथे हुए हैं; इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, इसलिये वह सहजरूप से सत्य के साथ अनृत को, शुभ के साथ अशुभ को, और जीवन के साथ मृत्यु को स्वीकार करती है। वह अद्वैत में द्वैत और द्वैत में अद्वैत देखने की अभ्यासी है। तैत्तिरीयोपनिषद के षष्ठ अनुवाक् में इस सर्वसमावेशी दृष्टि का रहस्य बताया गया है – **'सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत्। स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्। यदिदं किञ्च। तत्सत्यमित्याचक्षते। तदप्येष श्लोको भवति।' (तैत्ति.उप. २.६)**

इसका भाव यह है कि उस एक परमात्मा ने संकल्पपूर्वक इस सृष्टि का विस्तार किया। सृष्टि की रचना कर वह इसमें प्रविष्ट हो गया। वह सत्यस्वरूप परमात्मा ही मूर्त और अमूर्त, वाच्य और अवाच्य, चेतन और जड़ तथा सत्य और असत्य के रूप में प्रकट हुआ। जो कुछ यह दिखलाई देता है और अनुभव में आता है, वह सब परमात्मा ही है, ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं। इस तत्त्वदर्शन ने भारतीय संस्कृति की दृष्टि को बड़ा विस्तार और प्रौढि दी और जीवन को उसके सभी रूपों में सराहने की प्रेरणा दी। यही कारण है कि उसकी देव-भावना भी विरुद्धधर्माश्रयी है और शिव इसका सबसे सुन्दर दृष्टान्त हैं। शिव सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् का मूर्तिमान रूप हैं किन्तु वे अनृत, अशिव और असुन्दर को अस्वीकार नहीं करते। सामान्यत: हम जिसे अशुभ और भयप्रद समझते हैं, उसे भी उन्होंने अपना रखा है, मानो यह समझा रहे हैं कि 'डरो मत, यह सब भी मैं ही हूँ।' उनकी जटाओं में मोक्षदायिनी गंगा की धारा और मस्तक पर अमृत की वर्षा करता बालचन्द्र है, तो कण्ठ में हलाहल है, शरीर पर भयंकर विषधर लिपटे हुए हैं। वे केसर और चन्दन नहीं, चिताभस्म का अंगराग धारण करते हैं।

वे हिमालय के शिखर पर ही नहीं, श्मशानभूमि में भी निवास करते हैं। वे जीवन की सम्पूर्णता अपने में संजोए हैं, अन्यथा यह कैसे सम्भव है कि जो शिव परम वीतराग हों, वे कामकला के आदि-आचार्य भी हों; जो मूर्तिमान वैराग्य हों, वे मोहाविष्ट होकर सती का शव हाथों में उठाये त्रैलोक्य में भटकते फिरें; वाणी जिसके स्वरूप को व्यक्त न कर सके, वे संगीत के पंचरागों के प्रथम गायक हों। यही नहीं, भारतीय संस्कृति ने तो मानो अपना सारा ऐश्वर्य उनके चरणों में बिखेर दिया है। भारतीय परम्परा उन्हें ज्ञानस्वरूप परमयोगी ही नहीं मानती, वह उन्हें आगम, तन्त्र, मन्त्र, संगीत, नृत्य और व्याकरण का आदि-आचार्य भी मानती है। वे शाबर मन्त्रों के रचयिता हैं, जिनका स्वरूप उन्हीं की तरह रहस्यमय है। अनाहतनाद के प्रतीक उनके डमरू से ही समस्त वर्णसमाम्नाय की उत्पत्ति हुई है – **'नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।**

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धा-नेतद्विमर्शो शिवसूत्रजालम्।।

इसी कारण 'अइउण् ऋृऌक्' आदि सूत्र माहेश्वरसूत्र कहे जाते हैं। यह शिव का आधिदैविक रूप है, जिसके वैभव का विस्तार समस्त पुराण साहित्य में प्राप्त होता है। यह शिव का सगुण, साकार रूप है, जिसका अनुसरण शैव और शाक्त आगम करते हैं।

शिव का यह सगुण साकार रूप भी अन्तिम सत्य नहीं है, अन्यथा वे परिच्छिन्न और सीमाबद्ध हो जाएँगे, अत: आगम इसकी आध्यात्मिक व्याख्या भी करते हैं। वस्तुत: सारी की सारी भारतीय संस्कृति व्यंजनाप्रधान है, वह किसी भी वस्तु या विषय के दृश्य या 'इदमित्थम्' रूप को आत्यन्तिक सत्य स्वीकार नहीं करती; संवेदना या बोध के

भिन्न-भिन्न स्तरों पर वह उनकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ करती है। शिव के व्यक्तित्व से जुड़े तत्त्वों को वह आध्यात्मिक स्तर पर एक भिन्न परिप्रेक्ष्य में देखती है। एक दो उदाहरण दृष्टव्य हैं, जैसे उनके शरीर पर लगी हुई चिताभस्म ज्ञानाग्नि से भस्मीभूत हो जाने वाले विश्व का प्रतीक है, जिसे वे लीलापूर्वक अपने अंगों पर धारण करते हैं; वैराग्य, बोध और उपरतिरूप अपने त्रिशूल से वे वासना, अज्ञान और मन का नाश कर प्राणियों का उद्धार करते हैं, और उनका डमरू उस अनाहतनाद का प्रतीक है, जिससे समस्त वर्णसमाम्नाय उत्पन्न होता है।

शिव का जो आध्यात्मिक रूप है और उससे भी परे जो सर्वथा अव्यक्त, अव्यवहार्य, स्वानुभूत्यैकगम्य रूप है, वह शैव दर्शन के केन्द्र में है, जिसकी विशद आलोचना शैव दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में प्राप्त होती है। किन्तु इन रूपों के अतिरिक्त भी उनका एक रूप है, जो इन सबसे अधिक मनोहारी है, और वह है उनका लोकरंजक रूप। उनका यह रूप भारतीय कला, स्थापत्य, साहित्य और ग्रामांचल के लोकगीतों में मिलता है, जहाँ वह परमतत्त्वरूप शिव, जिनका रहस्य योगिजन भी नहीं जानते, पार्वती मैया के 'बौरहे वर' बन जाते हैं और सर झुका कर मुस्कुराते हुए ससुराल की स्त्रियों के व्यंग्य वचन सुनते हैं; और तब वे सहस्रारचक्र से उतर कर हमारी भावनाओं में आ बसते हैं।

शिव के इस व्यक्तित्व में रुद्र को देख पाना कितना कठिन है, किन्तु हैं ये रुद्र ही। वस्तुत: रुद्र के रूप में यह परिवर्तन पुराणकाल के पूर्व ही हो चुका था, पुराणों ने तो रुद्र के इस नवीन अवतार का शृंगार मात्र किया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् इस बात की सूचना देता है। पहले तो ऋषि अनेक वैदिक देवताओं में से एक रुद्र को सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक एक और अद्वितीय परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं –

'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः।।'

(श्वे. उप. ३.२)

इस मन्त्र का भाव यह है कि जो अपनी स्वरूपभूत विविध शक्तियों के द्वारा इस जगत पर शासन करता है, वह रुद्र एक ही है अत: विद्वानों ने (जगत्कारण का विचार करते समय) दूसरे का आश्रय नहीं लिया। वह समस्त जीवों के भीतर स्थित है। सम्पूर्ण लोकों की रचना कर उनकी रक्षा करने वाला वह परमेश्वर प्रलयकाल में इनको (अपने भीतर) समेट लेता है। इस प्रकार रुद्र की सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रतिष्ठा कर वह उनसे प्रार्थना करता है –

'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।'

(श्वे. उप.३.५)

हे रुद्र देव ! आपकी भयानकता से रहित (अघोरा) तथा पुण्यकर्मों से प्रकाशित होने वाली (अपापकाशिनी) जो कल्याणमयी शान्त (शन्तमया) मूर्ति है, हे गिरिशन्त (पर्वत पर निवास करते हुए सबको सुख प्रदान करने वाले) आप कृपा कर उस मूर्ति से ही हम पर दृष्टिपात करें। और –

'यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्।।'

(श्वे. उप. ३-६)

हे गिरिशन्त, आपने प्रहार करने के लिये जिस बाण को हाथ में ले रखा है, उस बाण को कल्याणमय बना लें, जीवसमुदायरूपी इस जगत् को नष्ट न करें।

उपनिषदों के मन्त्रदृष्टा ऋषि ने ही इस सत्य को सर्वप्रथम जाना कि विश्व को सब ओर से आच्छादित करने वाले, सर्वव्यापक उस एक परमेश्वर को जानकर ज्ञानीजन अमर हो जाते हैं –

'विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वामृता भवन्ति'।

(श्वे. उप. ३.७)

इस प्रकार भारतीय मनीषा के संस्कर्ता, उपनिषदों के ऋषियों ने अपनी तप:पूत प्रज्ञा से रुद्र की घोर मूर्ति में शिव के कल्याणमय सौम्य रूप के दर्शन किये। कालान्तर में धीरे-धीरे पार्थिवता के बन्धनों से मुक्त होती, ज्ञान की उच्चतर भूमिकाओं का साक्षात्कार करती और लौकिक सुखों के आकर्षण का अतिक्रमण कर लोकोत्तर आनन्द का अनुसन्धान करती भारतीय संस्कृति ने शिव की इस मूर्ति को और भी संवारा और अन्तत: भारत की सत्यान्वेषिणी दृष्टि ने मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य सर्वत्र इस शिवत्व का अनुसन्धान ही स्थिर किया। **(समाप्त)**

श्रीरामकृष्ण एवं उनके गृहस्थ शिष्यों के जीवन में पवित्रता

सुखदराम पाण्डेय

(गतांक से आगे)

डॉ. दत्त सरकारी रसायनशास्त्री थे। एक बार एक व्यवसायी ने इंग्लैण्ड से आयातित मिट्टी के तेल के परीक्षण के लिये इसका नमूना उनकी प्रयोगशाला में भेजा। विपणन (मार्केटिंग) से पूर्व नियमानुसार यह परीक्षण अनिवार्य था। परीक्षण में मिट्टी के तेल की गुणवत्ता निर्धारित स्तर से तीन परिमाण कम पाई गई। अत: डॉ. दत्त ने व्यवसायी को प्रमाण-पत्र देने से इन्कार कर दिया। लाखों का नुकसान देखकर व्यवसायी ने डॉ. दत्त को चालीस हजार रुपये रिश्वत के रूप में देने का प्रस्ताव रखा। किन्तु डॉ. दत्त ने इसे स्वीकार नहीं किया। यह घटना लगभग १३० वर्ष पूर्व की है। पाठक धनराशि की मात्रा का सहज अनुमान कर सकते हैं। किन्तु श्रीरामकृष्ण देव के कृपापात्र निर्लोभी शिष्य ने अपने सरकारी कर्तव्य के समक्ष रुपयों के मूल्य को तुच्छ समझा।

क्या हम पैसा हैं, जो पैसे को देखकर आकृष्ट हो जाते हैं? क्या हम शरीर हैं, जो शरीर से मिलने की कामना करते हैं? क्या हम पदार्थ हैं, जो पदार्थ के संग्रह के लिये चिन्तित होते हैं? हम तो चेतना हैं, चेतना का प्रवाह हैं। हम आत्मा हैं और आत्मा के साथ रमण करना ही हमें शोभा देता है।

६. निर्लिप्त जीवन : रामचरितमानस में भरत के चरित्र का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा –

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा।।

भरत जी अयोध्या में इस तरह रहते थे, जैसे चंपक के बाग में भौंरा रहता है। अर्थात् भौंरा चंपक के बाग में रहता तो है, किन्तु चंपक के फूल पर बैठता नहीं। श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे कि संसार में पांकाल मछली की तरह रहो, जो रहती तो कीचड़ में है, किन्तु उस पर कीचड़ लगती नहीं है। इसी प्रकार 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' कहकर हमारे शास्त्रों ने स्पष्ट किया है कि जैसे कमल के फूल को जल की बूँदे भिगाती नहीं हैं, वैसे ही हम संसार में रहें, किन्तु संसार हम पर कोई प्रभाव न डाल पाए। श्रीरामकृष्ण देव की वाणी है, 'नाव जल में रहे, यह तो ठीक है, किन्तु नाव में जल न आने पाए, अन्यथा नाव डूब जायेगी।' संसार में हमारे रहने में कोई दोष नहीं है, किन्तु यदि संसार हममें आ जाय, तो हमारा विनाश अवश्यम्भावी है।

श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य श्री मनमोहन मित्र के जीवन में हम पाते हैं कि असंख्य विपदाओं के आने पर भी उनके गृह एवं दफ्तर का कार्य कभी प्रभावित नहीं हुआ। उनकी आँखों के सामने उनकी माँ, पत्नी एवं बेटियों की मृत्यु होने पर भी वे विचलित नहीं हुए। श्रीरामकृष्ण देव को अपना जीवन-धन मानने वाले मनमोहन ने जब अपना घर-बार छोड़कर संन्यास लेने की योजना श्रीरामकृष्ण देव को बतायी, तो वे बोले - "शौल मछली अपने बच्चों का झुण्ड लेकर नीचे-नीचे चलती है। यदि वह साथ न रहे, तो उसके बच्चों को अन्य मछलियाँ खा जाएँगी।" इसी प्रकार गृहस्वामी ही घर का अवलम्ब है। अत: घर पर ही रहकर साधन-भजन करना अच्छा है। श्रीरामकृष्ण देव की सेवा में संलग्न मनमोहन जब अपने कार्यालय न जाने की बात कहते थे, तो श्रीरामकृष्ण देव उन्हें कार्यालय जाने के लिये प्रेरित करते थे। सचिवालय में सरकारी सेवा करते हुए मनमोहन को श्रीरामकृष्ण की कृपा से जीवन के परम एवं चरम फल समाधि की प्राप्ति हुई थी। अत: स्पष्ट है कि दृष्टिकोण सही रखकर सांसारिक कार्य करते हुए व्यक्ति के लिये जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य की प्राप्ति भी सम्भव है।

७. 'मैं' 'तुम' और हमारा पारस्परिक सम्बन्ध : श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे कि केवल यह ज्ञान ही पर्याप्त है कि "मैं (स्वयं को दिखाकर) कौन हूँ, तुम कौन हो और हमारा तुम्हारा सम्बन्ध क्या है?" यदि नौकरी या अपना कारोबार करते हुए हम इतना समझ लें कि श्रीरामकृष्ण कौन हैं, मैं कौन हूँ और मेरा उनसे सम्बन्ध क्या है, तो यही हमारी ऐहिक एवं पारमार्थिक उन्नति के लिये पर्याप्त है। इसीलिये श्रीरामकृष्ण प्राय: अपने सम्पर्क में आनेवाले लोगों से पूछते थे कि वे उन्हें क्या समझते हैं? कोई उन्हें नारद-शुकदेव जैसा साधु समझता था, कोई उन्हें देवता मानता था, कोई उन्हें देव एवं मानव के बीच कहीं स्थित पाता था और कोई-कोई उन्हें साक्षात् ईश्वर मानते थे। श्री मथुरामोहन विश्वास, जो रानी रासमणि के दामाद तथा श्रीरामकृष्ण के रसद्दार थे, उन्हें अपना इष्ट मानते थे। एक जमींदार एवं राजा जैसी हैसियत रखने वाले मथुरबाबू जब-तब दक्षिणेश्वर काली मन्दिर की व्यवस्था के सिलसिले में मन्दिर आया करते थे। एक दिन उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव को अपने कमरे के बरामदे में टहलते हुए देखा कि जब वे सामने से आते हैं, तो उनका रूप माँ काली का है और जब वे पीठ फेर लेते हैं, तो वे शिव के रूप में दिखते हैं। शिव-शक्ति के

सम्मिलित स्वरूप श्रीरामकृष्ण देव के इस अद्‌भुत दर्शन के बाद से आजीवन श्री विश्वास के प्रत्येक सांसारिक एवं सामाजिक कार्य श्रीरामकृष्ण की प्रेरणा से ही होते रहे। श्री गिरीश घोष ने उन्हें ईश्वरावतार मानकर अपने प्रत्येक नाट्य-कर्म के केन्द्र में रखा। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें 'अवतार-वरिष्ठ' कहकर उनकी आराधना के गीत गाए। अमरीका, इंग्लैण्ड, भारत एवं अन्य देशों में स्वामीजी के प्रत्येक कदम पर, यहाँ तक कि उनकी प्रत्येक साँस में श्रीरामकृष्ण उपस्थित रहे। स्वामीजी ने कहा है कि वे जो कुछ बोलते हैं, उससे एक दिन पहले श्रीरामकृष्ण आकर उन्हें बता जाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि अमेरीका में एक रात इन दोनों के वार्तालाप को पास वाले कमरे में निवास करने वाले व्यक्ति ने भी सुना। स्वामीजी की कीर्ति से आहत एक ईर्ष्यालु व्यक्ति ने जब पेय-पदार्थ में जहर मिलाकर उन्हें पिलाना चाहा, तो श्रीरामकृष्ण ने प्रकट होकर उन्हें वह पेय पीने से मना कर दिया। श्रीरामचरितमानस में कहा गया है –

सुनु मुनि तोहि कहौं सह रोसा।
जपहिं जो मोहिं तजि सकल भरोसा।।
करहुँ सदा तिन कइ रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी।।

अर्थात् श्रीभगवान कहते हैं कि जो लोग सारे सहारे त्यागकर मेरे शरणापन्न होते हैं, उनकी मैं वैसे ही रक्षा करता हूँ, जैसे माँ अपने बच्चे की रखवाली करती है। इस प्रसंग में श्रीरामकृष्ण के प्रति समर्पित प्राण श्री अधरलाल सेन का जीवन-वृत्त उल्लेखनीय है। श्री सेन डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। अत: सरकारी काम की व्यस्तताओं के बीच पूजा-पाठ के लिये अधिक समय नहीं दे पाते थे, किन्तु इसके बावजूद वे अपने जीवनकाल में ही परम शान्ति एवं आनन्द के अधिकारी बने। कार्यालय का कार्य समाप्त कर वे प्राय: नित्य सायंकाल श्रीरामकृष्ण के पास आया करते थे। श्रीरामकृष्ण ने भी अनेक बार उनके घर पर पदार्पण किया था। इससे स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण की उन पर सतत दृष्टि थी। यहाँ तक कि घोड़े से गिरकर गम्भीर रूप से घायल श्री सेन के अन्त समय में उनके समीप उपस्थित रहकर वे उसी प्रकार उनके शरीर पर हाथ फेरते रहे, जैसे जटायु के शरीर पर श्रीरामचन्द्र जी ने हाथ फेरकर उन्हें अभय प्रदान किया था। आनन्दातिरेक में अश्रु-मोचन करते हए सेन महाशय को श्रीरामकृष्ण ने भी अभय-वाणी सुनाकर उन्हें अपना परम धाम प्रदान किया।

८. कामिनी-कांचन त्याग : आधुनिक वैश्विक समाज जिस प्रकार की आपराधिक गतिविधियों से आक्रान्त है, उसका प्रमुख कारण कामिनी एवं कांचन को लेकर चलने वाला अन्त: संघर्ष है। श्रीरामकृष्ण ने सभी को सावधान करते हुए कहा था कि कामिनी-कांचन सभी अनर्थों की जड़ है, अत: इनका त्याग करो। यहाँ त्याग से तात्पर्य अनासक्ति से है। धन एवं स्त्री से घृणा करने की आवश्यकता नहीं है। 'टाका' (रुपये) एवं 'माटी' को समान कहकर दोनों को गंगाजी में फेंक देने वाले श्रीरामकृष्ण लक्ष्मीजी के प्रति अपनी असीम श्रद्धा व्यक्त करने से भी नहीं चूकते थे। इसी प्रकार पुरुषों को स्त्रियों से दूर रहने का उपदेश देने वाले वे श्रीमाँ सारदा देवी की जगज्जननी के रूप में उपासना भी करते हैं और अपनी सारी तपस्या का फल एवं जपमाला उनके चरणों में सौंप देते हैं।

तारक के जीवन में भी हम देखते हैं कि वे विवाहित होने के बावजूद स्त्री-संग से सर्वथा दूर रहे। फलत: स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें 'महापुरुष' कहा और वे रामकृष्ण संघ में स्वामी शिवानन्द के नाम से अनेक जीवों के सद्‌गति दाता सदगुरु के रूप में पूजित हुए। योगीन (कालान्तर में स्वामी योगानन्द) एवं श्रीदुर्गाचरण नाग के जीवन भी कामिनी-कांचन त्यागी महापुरुषों के रूप में हमारे आदर्श एवं प्रेरणा के स्त्रोत हैं।

९. महान स्वर्णिम मार्ग : जीवन के चरम उद्देश्य को पाने के लिये श्रीरामकृष्ण ने चार उपाय सुझाये हैं : १. सत्संग २. एकान्त-वास ३. सत्-असत् विवेक ४. भगवन्नाम-गुण-कीर्तन। सार्वजनिक जीवन में व्यस्त रहनेवाले आदमी भी उपर्युक्त चार उपायों का आश्रय लेकर अपने जीवन को धन्य बना सकते हैं। उदाहरणस्वरूप श्रीरामकृष्ण के एक शिष्य श्री पूर्णचन्द्र घोष भारत सरकार के वित्त विभाग में कार्यरत थे। जब तक कलकत्ता राजधानी थी, वे प्राय: नित्य बेलूड़ मठ आते और एकान्त में बैठे रहते थे। कार्यालय के समय के अतिरिक्त प्रात: एवं सायंकाल घण्टों वे श्रीश्रीठाकुर के प्रसंग को ही लेकर समय बिताते थे। श्रीठाकुर के भक्तों के साथ उनका नित्य सम्पर्क रहता था। श्री महेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा भेजे गये युवा छात्रों से वे विशेष रूप से बातचीत करना पसन्द करते थे। जब भारत की राजधानी दिल्ली स्थानान्तरित हो गयी, तो वे दिल्ली आकर रात में श्रीठाकुर का स्मरण करते थे। सरकारी कार्यवश शिमला में अपने प्रवास के समय वे पहाड़ के किसी एकान्त स्थान में बैठकर ध्यानमग्न रहते थे। प्राय: उनमें देह बोध नहीं रह जाता था। इस सम्बन्ध में एक बार एक मित्र के पूछने पर उन्होंने बताया था

कि उन्हें गले के ऊपर के हिस्से का ही बोध है, नीचे का नहीं।

असिस्टेंट इंजीनियर के पद पर कार्य करते हुए हरिप्रसन्न नामक एक युवक भी श्रीरामकृष्ण देव के द्वारा सुझाए गए चार उपायों के अनुपालन एवं उनकी कृपा से संन्यास लेकर स्वामी विज्ञानानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए थे। बाद में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वे चौथे अध्यक्ष बने, जिनके हाथों बेलूड़ मठ में विशाल भव्य श्रीरामकृष्ण मन्दिर का निर्माण हुआ।

एक अध्यापक एवं प्रधानाचार्य के रूप में श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, निर्देशक, अभिनेता एवं नाटककार के रूप में श्री गिरीशचन्द्र घोष, डिकिन्सन कम्पनी में उच्चाधिकारी के रूप में कालीपद घोष, सरकार के उच्च प्रशासनिक पद पर कार्यरत श्री अधरलाल सेन, केमिस्ट एवं वैज्ञानिक के रूप में सरकारी सेवारत डॉ. रामचन्द्र दत्त, होम्योपैथी के डॉक्टर के रूप में डॉ. दुर्गाचरण नाग, डा. महेन्द्रलाल सरकार आदि ऐसे अनेक महानुभाव हैं, जो श्रीरामकृष्ण देव का स्मरण-मनन एवं साधुसंग करते हुए नीर-क्षीर विवेक की तीव्रता के कारण सांसारिक पद के साथ परम पद के अधिकारी बने।

वर्तमान परिस्थिति में जब भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, आतंकवाद, प्रान्तवाद, जैसी विभाजक एवं विध्वंसक प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं, शान्ति की लालसा विलासिता लगने लगी है। पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जब कहते हैं –

दुःख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहू आज, जो नहीं कही।।

तो इस अनकही कथा में ही समाज का यथार्थ रूप खिंच आता है। दुःख एवं अशान्ति के बीच स्वयं निराला का महाप्राण होना इस अल्पज्ञात तथ्य पर आधारित है कि वे स्वामी सारदानन्द जी (शरत महाराज) के शिष्य एवं श्रीरामकृष्ण-श्रीमाँ सारदादेवी के परम भक्त थे।

चतुष्पदीय महान स्वर्णिम मार्ग के अवलम्बन सहित श्रीरामकृष्ण परमहंस देव द्वारा निर्दिष्ट बातों को व्यवहार में लाने से हमारे जीवन में वैसी ही पवित्रता एवं शान्ति की आभा अवतरित होगी, जैसे कि श्रीरामकृष्णदेव के सम्पर्क में आनेवाले अनेक लोक-सेवकों के जीवन में प्रगट हो चुकी है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ :

१ रामकृष्ण भक्तमालिका २ - God Lived with Them ३- They Lived with God ४- श्रीरामकृष्ण-वचनामृत ५. रामकृष्ण लीलाप्रसंग

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२७९. कर्ता-धर्ता यही विधाता

एक बार एक सुलतान ने सन्त इब्राहिम से पूछा, "क्या आप बता सकेंगे कि खुदा क्या करता है?" इब्राहिम ने उससे कहा, "पहले आप स्वीकार करो कि मैं जो भी कहूँगा, तुम उसका पालन करोगे।" सुलतान के 'हाँ' कहने पर संत ने उससे कहा, "आप काजी की जगह ले लें और काजी आपके सिंहासन पर बैठेगा।" सुलतान ने कहा, "ये क्या बकवास कर रहे हैं आप ! बादशाह को सिंहासन से उतारने का आपने साहस कैसे किया?" सन्त ने शान्त स्वर में कहा, "अभी-अभी आपने दरबारियों के सामने मेरा कहना मानने को स्वीकृति दी है। अब आप उससे मुकर रहे हैं।" सुलतान नरम पड़ गया। उसने सिंहासन को खाली कर काजी को वहाँ बैठने को कहा और स्वयं काजी के स्थान पर बैठ गया।

तब सन्त ने कहा, "सुल्तान मत भूलो कि खुदा हर जगह विद्यमान रहता है। वह देखता रहता है कि कौन अच्छा काम कर रहा है और कौन बुरा काम कर रहा है। भले-बुरे के आधार पर वह सबको फल देता है। न जाने वह कब बादशाह को सिंहासन से उतार कर किसी फकीर को बादशाह बना दे। वह किसी को बनाता है, तो किसी को बिगाड़ता है। इस धरती पर जो भी होता है, उसकी इच्छा से होता है। अब तू ही देख, उसने ताज तुझे दिया और मुझे फकीर बना दिया। जो भी होता है, उसे खुदा की इच्छा मानकर हमें सन्तुष्ट होना चाहिए।" सन्त ने आगे कहा, "संसार की सारी चीजें इसी खुदा की देन हैं। सूरज-चाँद, दिन-रात, हवा सब उसी के कारण सक्रिय हैं। पत्ता भी उसी की इच्छा से हिलता है। खुदा हर जगह मौजूद है, सब कुछ देखता है और सबकी इच्छा पूरी करता है। उसके बारे में मन में कोई भी भ्रम पैदा न करके हमें उस पर विश्वास करना चाहिये। उसकी उपासना से ही हम अपनी भलाई कर सकते हैं।' ○○○

एकमात्र इच्छाशक्ति के द्वारा सब कुछ हो जाएगा। इच्छाशक्ति संसार में सबसे अधिक बलवती है। उसके सामने विश्व की कोई वस्तु नहीं ठहर सकती; क्योंकि वह साक्षात् भगवान से आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है।

– स्वामी विवेकानन्द

श्रीमाँ सारदा का जीवन-दर्शन

प्रो. पूनम सिन्हा
हिन्दी विभाग, ललित नारायण तिरहुत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

हे सारदे माँ, हे सारदे माँ ! अज्ञानता से हमें तार दे माँ ! हे जगत जननी माँ सारदे ! हमें अज्ञानता के दलदल से निकालकर विश्व के निर्माण में हमारी सहायता करो। माँ भौतिक शरीर से भले ही हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी स्नेह-छाया हमेशा हमारे सिर पर है। उसी स्नेह छाया को तो श्रीरामकृष्ण देव ने पहचान लिया था। माँ काली के प्रथम दर्शन के पश्चात् उनके पुन: दर्शन के लिये ठाकुर व्याकुल हो उठे। माँ के पुन: दर्शन की चाह ने उन्हें उन्मत्त बना दिया। उनके व्यवहार को देखकर लोगों ने उन्हें पागल घोषित कर दिया। यह समाचार जब कामारपुकुर में श्रीरामकृष्ण की माता चन्द्रामणि देवी को मिला, तो व्याकुल होकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अपने पास कामारपुकुर बुला लिया।

माता चन्द्रामणि ने सोचा कि अगर इसका विवाह कर दिया जाए, तो इसका मन सांसारिकता में बँधकर स्थिर हो जाएगा। ऐसा ही तो महात्मा बुद्ध के माता-पिता को भी लगा था कि यदि सिद्धार्थ का विवाह कर दिया जाय, तो इसकी भटकन समाप्त हो जायेगी और यह सांसारिकता में रम जाएगा। क्या ऐसा हो पाया? श्रीरामकृष्ण ने अपनी माँ की इच्छा से केवल सहमति ही नहीं दी, वरन् माँ को बताया कि जयरामबाटी में श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय की सुपुत्री तुम्हारी बहू के रूप में चिह्नित कर रखी हुई है। दैवी कान्ति से देदीप्यमान वह कन्या केवल अपने माता-पिता और परिवार की ही लाडली नहीं थी, बल्कि समस्त ग्रामवासियों की भी लाडली थी। अत: श्रीरामकृष्ण की माँ चन्द्रामणि उस बालिका को वधू बनाने के लिये तुरन्त सहमत हो गयीं। हालाँकि माँ सारदा तो उन्हें पहले ही वरण कर चुकी थीं। श्रीरामकृष्ण के भान्जे हृदयराम मुखोपाध्याय का घर शिहड़ में था। इस नाते श्रीरामकृष्ण वहाँ आया-जाया करते थे। श्रीमाँ सारदा का ननिहाल भी उसी ग्राम में था। एक बार हृदय के घर में भजन का आयोजन था। छोटी बालिका सारदा भजन की सभा में एक महिला की गोद में बैठी हुई थी। गीत समाप्त हो जाने पर उस महिला ने विनोद में सारदा से पूछा ''इतने लोगों में इनमें से किसके साथ तू विवाह करना चाहती है?'' सारदा ने तुरन्त दोनों हाथ उठाकर समीप ही बैठे हुए श्रीरामकृष्ण को दिखा दिया। जिस दिन माँ इस प्रकार स्वयंवरा हुयीं, उस दिन उन्हें सांसारिक दृष्टि से विवाह शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं था, किन्तु जिस दैव-प्रेरणा से उन्होंने हाथ दिखाकर अपने पति को बता दिया, उसी दैव-विधान से उनके सत्य-संकल्प मन की अभिलाषा कुछ वर्षों में ही पूर्ण हुई।

माँ का बाल्य जीवन भी बड़ा प्रेरक है। सारदामणि का जन्म २२ दिसम्बर, १८५३ को पश्चिम बंगाल के बाँकुड़ा जिले के जयरामबाटी नामक ग्राम में हुआ था। वे अपने माता-पिता की सबसे बड़ी सन्तान थीं। वे निर्धन परिवार की बड़ी पुत्री होने के कारण सारे कार्यों को स्वयं शान्त-चित्त से करती थीं। वे अपनी अवस्था से अधिक परिपक्व थीं। मिट्टी की काली देवी तथा लक्ष्मी की मूर्ति बनाकर खेलने में उनकी विशेष रुचि थी।

सारदामणि की विद्यालय की शिक्षा अत्यन्त अल्प थी। श्रीमाँ रामायण तथा अन्य धार्मिक पुस्तकें पढ़ने में समर्थ हुईं, किन्तु लिखना वे अन्त तक न सीख सकीं। सबसे बड़ी बात यह थी कि उनका पालन-पोषण ऐसे सुसंस्कारी माता-पिता के संरक्षण और प्रभाव में हुआ, जिनका चरित्र परमोज्जवल और अनुकरणीय था। अन्त में वे ऐसे महान पुरुष के निकटतम सम्पर्क में आयीं, जिनमें आन्तरिक जीवन को

आध्यात्मिक दिशा में परिवर्तित करने की अद्भुत शक्ति थी।

१८५९ में जब सारदामणि का विवाह हुआ, तो वे अत्यन्त छोटी थीं। अत: विवाह के तुरन्त बाद वे मायके लौट आयीं। श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर पहुँचकर माँ काली के भाव में लीन हो गये। यह अन्तर्लीनता इतनी बढ़ी कि वे उन्मत्त हो गये। उनकी माँ चन्द्रामणि ने चिन्तित होकर पुन: उन्हें कामारपुकुर बुला लिया। इसी समय सारदामणि भी जयरामबाटी से कामारपुकुर आयीं। इस समय उनकी आयु १४ वर्ष की थी। श्रीरामकृष्ण ने अत्यन्त दक्षता से उन्हें आध्यात्मिक एवं गृह-कार्यों की शिक्षा दी। वे दोनों सात महीने एक साथ रहे, किन्तु उनका सम्बन्ध सामान्य पति-पत्नी की भाँति नहीं था। इस समय के अनुभव के बारे में माँ सारदा ने कहा था, "मैंने अनुभव किया कि मानों परमानन्द से परिपूर्ण एक पात्र मेरे हृदय में सदा के लिये स्थापित कर दिया गया है। जिस दिव्यानन्द से मेरा हृदय परिपूर्ण है, उसका ठीक-ठीक वर्णन कर ही नहीं सकती।" सात महीने के बाद श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर चले गए और माँ सारदा जयरामबाटी लौट गयीं, पर उनका ध्यान निरन्तर श्रीरामकृष्ण में ही केन्द्रित रहता था। माँ सारदामणि शान्त भाव से उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने लगीं, जब श्रीरामकृष्ण उन्हें अपने पास बुलाएँगे। इस अवधि में वे अन्तर्आनन्द में इतनी लीन हो गयीं कि किसी प्रकार की सांसारिक कठिनाई अथवा कष्ट उन्हें विचलित न कर सका। उन्हें निरन्तर यह जन-रव सुनाई देता रहा कि श्रीरामकृष्ण पागल हो गए हैं। कुछ दिनों बाद यात्रियों का एक दल गंगा-स्नान के लिए कलकत्ता जा रहा था। वे भी इसी दल के साथ अपने पिता के साथ चल पड़ीं। रास्ते में वे ज्वर-ग्रस्त हो गयीं। ज्वर की अचेतावस्था में उन्हें स्वप्न में एक बालिका दिखाई पड़ी। वह साँवली-सी बालिका उनकी सेवा करने लगी। जब माँ ने पूछा, "तुम कौन हो?" तो बालिका का उत्तर था, "मैं दक्षिणेश्वर से आयी हूँ और तुम्हारी बहन हूँ। मैं सारा मार्ग लाँघकर तुम्हें लेने आयी हूँ।" प्रात:काल माँ का ज्वर उतर चुका था। दक्षिणेश्वर पहुँचने पर श्रीरामकृष्ण ने उनके ठहरने की व्यवस्था अपने ही कमरे में की एवं उनकी सेवा-शुश्रूषा का सारा दायित्व स्वयं ले लिया। स्वस्थ होने पर वे नीचे के कमरे में अपनी सास के साथ रहने लगीं।

श्रीरामकृष्ण अब निरन्तर सहज समाधि अवस्था में रहते थे। माँ अत्यन्त पवित्र और महान थीं। उनकी तनिक भी इच्छा न थी कि ऐसे महान सन्त को आध्यात्मिक भूमि से नीचे लाकर सांसारिकता के विकट दलदल में फँसाया जाय। ठाकुर एवं माँ का सम्बन्ध नाम मात्र के लिये भी सांसारिक नहीं था। वे भगवान श्रीरामकृष्ण की विनम्र शिष्या थीं।

एक बार श्रीरामकृष्ण ने महेन्द्रनाथ गुप्त, जिसे वे 'मास्टर' कहकर सम्बोधित करते थे, से कहा, "जानता है मेरे पागलपन के उपचार के लिये भाई और माता ने विवाह-बन्धन को महौषधि समझा। संसार-बुद्धि से वह उपचार सटीक भी था। तू अपनी दशा देख ! परिवार के चलते कितना जटिल है तेरा बन्धन ! सच रे मास्टर, कामिनी-बंधन सचमुच ही आदमी को गुलाम बना देता है। किन्तु मेरी माँ की लीला सारे नियम-विधान को राख में मिला देती है। उसके सामने क्या किसी का वश चलता है? मेरा विवाह हुआ जयरामबाटी की बेटी सारदा से, जो बन्धन नहीं, मुक्ति का हेतु बनी।" इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वयं श्रीरामकृष्ण माँ सारदा को अपनी मुक्ति का हेतु मानते हैं। सास भी बहू पर ही भरोसा करती थीं। वे श्रीरामकृष्ण से कहतीं, "गदाई, तेरा पेट अब कैसा है? सारदा कहती है, तू सोता नहीं, इसलिए बीमार रहता है। सारदा को लाख समझाती हूँ कि मेरे बेटे को समझा-बुझाकर अपनी राह पर ला। तेरी माँ तो बूढ़ी हुई रे गदाई ! बड़ी चिन्ता लगी रहती है। सारदा के सिवा कौन देखेगा मेरे बेटे को। उसे कहा है तुझे हिंच का साग खिलाया करे। सारदा को अपने साथ लेकर बाहर जाया कर।" ऐसी थी सबकी विश्वसनीय और प्रिय माँ सारदा, जो सहज ही सबके स्नेह एवं विश्वास का पात्र बन जाती थीं। माँ सारदा के प्रति श्री ठाकुर का अद्भुत विनय-भाव था। उनकी दृष्टि में सारदामणि माँ काली की साक्षात् प्रतिमा थीं। श्री ठाकुर कहा करते थे, "यदि उसकी मनोभावना को तनिक भी ठेस पहुँची, तो मेरी ईश्वर के प्रति भक्ति समाप्त हो जाएगी।" एक बार जब सारदा माँ ठाकुर के पाँव दबा रही थीं, तो उन्होंने अपने पतिदेव से प्रश्न किया, "आप मुझे किस दृष्टि से देखते हैं ?" श्रीरामकृष्ण का उत्तर था, "माँ काली जो मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं, वही मेरे पाँव दबा रही हैं।" श्रीरामकृष्ण बहुधा कहते थे – "मेरी साधना में सारदामणि का कुछ कम श्रेय नहीं है।" श्रीमाँ की महान पवित्रता ही श्रीरामकृष्ण के लिए सुदृढ़ कवच था। विवाह के पश्चात् एक बार श्रीरामकृष्ण ने माँ काली से प्रार्थना की थी कि उनकी सहधर्मिणी के मन में सांसारिक कामना का अंश मात्र भी न रह जाय। बाद में श्रीरामकृष्ण इस सम्बन्ध में कहते थे, "जब मैं सारदामणि के साथ रहने लगा, तो मुझे भली-भाँति मालूम हो गया कि काली माँ ने मेरी प्रार्थना सुन

ली है।''

मई महीने में श्री जगदम्बा की पूजा का एक विशेष दिन था। श्रीरामकृष्ण ने अपने कक्ष में ही माँ जगदम्बा की पूजा का आयोजन किया। श्रीरामकृष्ण अपने पूजा-कार्य में आगे बढ़ रहे थे, पास ही श्रीमाँ बैठी थीं। उन्होंने संकेत किया कि वे देवी के आसन पर बैठ जायँ। वे अर्ध-चेतनावस्था में निर्दिष्ट आसन पर बैठ गयीं। श्रीरामकृष्ण ने देवी रूप में उनकी पूजा की और पूजा करते हुए पूर्ण समाधि की अवस्था में पहुँच गये। यही अवस्था श्रीमाँ की भी हो गयी। इस प्रकार रात्रि की शान्त नीरवता में आराधक और आराध्य दोनों ही असीम में मिल गए।

इस समय दक्षिणेश्वर में एक वर्ष चार महीने रहने के पश्चात् श्रीमाँ अक्टूबर १८७३ में कामारपुकुर होते हुए जयरामबाटी चली गयीं। मार्च १८७४ में उनके पिता श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय का निधन हो गया। इस स्थिति में श्रीमाँ अपनी माँ के लिए अत्यन्त सहायक हुईं। १८७४ के अप्रैल में माँ दूसरी बार दक्षिणेश्वर गयीं। वे अत्यन्त बीमार हो गयीं। कुछ स्वस्थ होने पर पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ के लिए उन्हें मातृभूमि भेज दिया गया। वहाँ उनकी स्थिति अत्यन्त खराब हो गई। श्रीरामकृष्ण को जब इसकी जानकारी हुई, तो उन्होंने अपने भान्जे हृदय से कहा –''संसार में आकर क्या वह जीवन का चरम लक्ष्य अनुभव किये बिना ही चली जाएगी?'' जब सारे उपायों के बाद वे स्वस्थ नहीं हुईं, तो अत्यन्त निराश होकर ग्राम में स्थित सिंहवाहिनी के मन्दिर में गईं। वहाँ जो कुछ हुआ, उसका वर्णन माँ ने इस प्रकार किया – ''कुछ ही क्षणों में मुझे सिंहवाहिनी के दर्शन हुए। उन्होंने मेरे सामने प्रकट होकर मुझे औषधि बता दी, जिसके प्रयोग से मुझे तुरन्त लाभ हुआ।''

श्रीमाँ जनवरी १८७७ में तीसरी बार फिर दक्षिणेश्वर गयीं। उस समय यातायात का साधन विकसित नहीं था। जयरामबाटी से दक्षिणेश्वर की यात्रा में विस्तृत मैदान पार करना पड़ता है। रात्रि का आगमन तेजी से हो रहा था। माँ अपने साथियों से पीछे छूट चुकी थीं। यह मार्ग डकैतों के लिये कुख्यात था। उस अन्धेरे में उन्होंने कन्धे पर लाठी लिये हुए लम्बे आकार के एक व्यक्ति को अपनी ओर बढ़ते हुए देखा। समीप पहुँच कर श्रीमाँ से उसने कर्कश स्वर में पूछा, ''तुम इस समय कहाँ जा रही हो?'' श्रीमाँ ने अपूर्व भोलेपन से उत्तर दिया, ''पिताजी मैं दक्षिणेश्वर जा रही हूँ। आपके दामाद वहीं रहते हैं। मैं अपने साथियों से पीछे छूट गई हूँ।'' उस डकैत की पत्नी भी साथ में थी, जिसे श्रीमाँ ने माँ से सम्बोधित किया। वे डकैत दम्पत्ति छोटी जाति के थे। किन्तु श्रीमाँ के निष्कपट व्यवहार से इतने द्रवीभूत हुए कि रात में अपनी बेटी की तरह उनकी सेवा-शुश्रूषा की और उनकी विदा के समय वे रोने लगे। बाद में उन लोगों ने दक्षिणेश्वर आकर श्रीमाँ एवं श्रीठाकुर से भेंट भी की थी।

शम्भू मल्लिक ने श्रीमाँ के लिए दक्षिणेश्वर में एक छोटी-सी कोठरी बनवा दी थी। ऐसे तो प्रारम्भ में माँ को दो या तीन व्यक्तियों के लिये ही खाना बनाना पड़ता था, किन्तु बाद में उन्हें अधिक लोगों का भोजन पकाना पड़ने लगा। एक बार तो ठाकुरजी की जन्म तिथि पर ४०-५० व्यक्तियों का भोजन उसी कोठरी में बनाना पड़ा। नरेन्द्र मोटी रोटी और चने की गाढ़ी दाल पसन्द करते थे। रामचन्द्र दत्त भी रोटी माँगते थे और राखाल खिचड़ी पसन्द करते थे। वे सबकी सब प्रकार से माता के समान सेवा करती थीं। न कभी घबराती थीं, न कभी झल्लाती थीं। सहिष्णुता एवं दयालुता उनके व्यक्तित्व में समाहित थे। इसीलिये तो एक बार जब ठाकुर को पता चला कि महेन्द्रनाथ गुप्त की पत्नी अस्वस्थ है, तो उन्होंने महेन्द्र गुप्त से कहा, 'अरे मास्टर ! तुम सारदा से अपनी पत्नी के लिये तुलसी जल और मिश्री ले लो। किन्तु तुम उसे मत बताना कि तेरी पत्नी बीमार है। अन्यथा वह बेचैन हो जाएगी। तुम ऐसा करो कि लाटू से कहकर तुलसी दल और मिश्री सारदा से मँगवा लो।'' माँ श्रीरामकृष्ण की दिनचर्या का पूरा ध्यान रखती थीं। अत: जब माँ नहीं रहती थीं, तब उन्हें परेशानी होती थी।

एक बार एक अत्यन्त दुखी स्त्री ठाकुर के पास पहुँची। ठाकुर ने उसे माँ के पास भेज दिया। माँ ने पूजा में प्रयुक्त एक बेल पत्र उसे दिया और उसका अनुकूल प्रभाव पड़ा।

गंगाजी के जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्बि देखकर श्रीमाँ प्रार्थना करती थीं, ''चन्द्रमा में भी काले धब्बे हैं। किन्तु मुझे निष्कलंक बना दो। मुझे ऐसा पवित्र और धवल बनाओ, जैसा कि चन्द्रमा का प्रकाश है।'' उनमें अपनी आध्यात्मिक सफलता को छिपाने की अद्भुत क्षमता थी। एक बार उन्होंने योगिन माँ से कहा कि ठाकुर से निवेदन कीजिए की मुझे भी समाधि का आनन्द दें। जब योगिन माँ ठाकुर से आग्रह कर लौटीं, तो उन्होंने पाया कि माँ समाधि में लीन हैं।

एक बार नीलाम्बर बाबू के उद्यान में रहते समय मकान की छत पर ध्यान करते समय उनकी सारी बाह्य चेतना लुप्त हो गई।

वे आत्मविश्वास से भरपूर थीं। एक महिला उनके पास आती थी, जिसमें प्रारम्भ में चरित्र दोष था। ठाकुर ने माँ से कहा कि तुम उसकी संगति मत करो। किन्तु वे तो सबकी माँ थीं, भला अपनी पुत्री को अपने पास आने से कैसे रोकतीं। माँ की दृष्टि में ठाकुर का सबसे बड़ा गुण उनका त्याग था।

ठाकुर जब बीमार हो गए, तो उनके शिष्य उन्हें श्यामपुकुर ले गए। माँ भी दक्षिणेश्वर से श्यामपुकुर आ गईं। वहाँ ठाकुर का कक्ष भक्तों से भरा रहता था। माँ को वहाँ दिन में बैठने तक की जगह नहीं रहती थी। दिनभर वे सीढ़ी के ऊपर के एक छोटे से कमरे में रहकर ठाकुर के खान-पान की सारी व्यवस्था करती थीं। अल्प साधन में सुव्यवस्था करने में निपुण माँ से बढ़कर दूसरा कौन हो सकता था !

ठाकुर का देहावसान हो गया। जब उन्होंने वैधव्य वेश धारण करना चाहा, तो ठाकुर ने साक्षात् उपस्थित होकर यह कहते हुए मना किया, "मैं गया कहाँ हूँ, एक कमरे से दूसरे कमरे में।" अत: माँ ने लोकापवाद का ध्यान नहीं रखा एवं अपना कंगन धारण कर लिया। वे आत्मविश्वास से परिपूर्ण थीं।

एक बार माँ दक्षिण भारत में तीर्थ यात्रा पर गईं। स्वामी विवेकानन्द के प्रशंसक रामनाद के राजा उन्हें अपने राजभवन ले गये और उनसे बहुत आग्रह किया कि उनके रत्न एवं बहुमूल्य सम्पत्ति में से माँ कुछ भी स्वीकार कर लें। किन्तु माँ ने कुछ भी स्वीकार नहीं किया।

ठाकुर श्रीमाँ को स्वयं के समान ही आध्यात्मिक-शक्तिसम्पन्न मानते थे। वृन्दावन में उन्होंने श्रीमाँ को स्वप्न दिया कि वे स्वामी योगानन्द को दीक्षा दें। क्योंकि ठाकुर ने स्वामी योगानन्द को विधिवत् दीक्षा नहीं दी थी। माँ की यह प्रथम दीक्षा थी।

माँ ने राधारमण मन्दिर में भगवान से जो माँगा, ऐसी माँग शायद किसी ने न की होगी। श्रीमाँ ने वृन्दावन के राधा रमण मन्दिर में आन्तरिक भाव से प्रार्थना की कि उनकी आँखें किसी दूसरे का दोष न देखें।

श्रीमाँ कहती थीं, "अगर जीवन में शान्ति चाहते हो, तो दूसरे का दोष मत देखो। दोष अपना देखो। सारा संसार तुम्हारा है। किसी को पराया मत समझो।"

तीर्थाटन के बाद वे गोलाप-माँ और योगानन्दजी के साथ कामारपुकुर गईं। वे दोनों लौट आए। माँ वहीं रह गईं। उस समय आर्थिक रूप से माँ इतनी विपन्न थीं कि कभी-कभी भात के साथ खाने के लिए उन्हें नमक भी प्राप्त नहीं होता था, किन्तु माँ श्रीठाकुर का सतत चिन्तन करते हुए सभी दुखों से परे चली गयीं। उनकी माँ उन्हें जयरामबाटी ले गईं। वे पुत्री को अपने साथ ही रखना चाहती थीं, पर वे पति की जन्मभूमि कामारपुकुर में ही लौट आयीं।

जब भक्तों को उनकी परिस्थिति की जानकारी मिली, तो उनलोगों ने माँ को कलकत्ता बुलाकर उनकी ठीक से देखभाल करने लगे। कभी वे कलकत्ता रहतीं, तो कभी जयरामबाटी में रहतीं और कभी तीर्थाटन पर निकल जातीं।

एक बार १८९० में जब माँ बोधगया गयी थीं, तो उन्होंने बोधगया के हिन्दू मठ की आदर्श-व्यवस्था देखकर अपने शिष्यों के स्थायी स्थान के लिये व्याकुल होकर ठाकुर से प्रार्थना की थी।

थोड़े समय पश्चात् ही १८९७ में बेलुड़ मठ की स्थापना हुई। कलकत्ता में वे ठाकुर के शिष्यों के यहाँ रुकती थीं। स्वामी सारदानन्द ने उनके लिये स्थायी भवन का निर्माण किया। वे वातावरण को अनुकूल कर लेती थीं।

माँ का आशीर्वाद लेने के पश्चात् ही स्वामी विवेकानन्द विदेश में धर्म-प्रचार का साहस कर सके। श्रीमाँ ने उन्नीसवीं शताब्दी में ईसाई भगिनी निवेदिता को अपने पास बैठाकर उसे स्नेह प्रदान किया था, उस समय के लिये यह बहुत ही साहस और उदारता की बात थी।

भगिनी निवेदिता ने श्रीमाँ के सम्बन्ध में कहा था, "ये प्राचीन समाज की अन्तिम महिला हैं या आधुनिक समाज की सर्वप्रथम।"

२१ जुलाई १९२० को अपने सभी सन्तानों को छोड़कर माँ सदा सर्वदा के श्रीठाकुर के साथ तल्लीन हो गयीं। उनका पार्थिव शरीर बेलूड़ मठ के पावन प्रांगण में अग्नि को समर्पित कर दिया गया। उनकी स्नेह, करुणा और अहेतुक वात्सल्य की छाप सबके हृदय में सदा-सर्वदा के लिये अंकित हो गयी। उनका आदर्श और आशीर्वाद संसार की सम्पूर्ण मानवता को हमेशा प्रेरित करता रहेगा। ○○○

मेरी सन्तान यदि धूल-कीचड़ में अपने को सान ले, तो मुझे ही उसको साफ करना होगा और गोद में उठाना होगा।...भय मत करो। हमेशा याद रखो कि कोई तुम्हारी रक्षा कर रहा है।

— श्रीमाँ सारदादेवी

नास्ति योगसमं बलम्

ब्रह्मचारी पूर्णचैतन्य
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, नारायणपुर

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं – हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है और उनमें से कोई विरला ही मुझे तत्त्व से अर्थात् यथार्थ रूप से जान पाता है।''[१] यहाँ भगवान ने दो दुर्लभ तत्त्वों की ओर ध्यान दिलाया है – पहला, भगवत् प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाले कितने कम हैं, यह तो जगत में प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है और दूसरा इस मार्ग पर प्राणपण से चलने पर भी यह दुष्प्राप्य है। यही हमारी विवेचना का विषय है। हममें से अधिकांश लोग अपने आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ बड़े उत्साह के साथ करते हैं, परन्तु लम्बे समय तक उस उत्साह को बनाए नहीं रख पाते, फलत: धीरे-धीरे हमारी साधना शिथिल होती जाती है। ज्यों-ज्यों हमारी साधना शिथिलतर होती जाती है, त्यों-त्यों हमारे मन में अपने आध्यात्मिक आदर्श तथा सांसारिक आकर्षणों के बीच द्वन्द बढ़ता जाता है। यद्यपि हम सभी भलीभाँति जानते हैं कि गुरु का क्या निर्देश है, शास्त्र की क्या शिक्षा है और हमारा क्या कर्तव्य है, तथापि इस सुदीर्घ यात्रा की गति को बनाए रखना हमारे लिये टेढ़ी खीर सिद्ध होता है। ऐसी असहायता से सामना होने पर ही हमें अपनी दुर्बलता तथा विवशता का बोध होता है ! साधना में आने वाली अधिकांश बाधाएँ, जो हमें अपने पथ से बलपूर्वक खींच लेती हैं, मूलत: हमारे जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित संस्कारों की वजह से आती हैं। ऐसी स्थिति में ईश्वर से बारम्बार सहायता के लिये प्रार्थना भी विशेष फलदायी नहीं होती, क्रमश: प्रार्थना की तीव्रता और उसमें व्याकुलता भी घटती जाती है। श्रीरामकृष्ण ने साधना का एक स्वर्णिम सूत्र बताया है – जब तक व्यक्ति अपना पूरा प्रयास करके थक नहीं जाता, तब तक उसे दैवी कृपा नहीं प्राप्त होती।

साधना में बल की आवश्यकता : साधना की एक प्रमुख पद्धति को राजयोग कहते हैं, जो पूर्ण व्यवस्थित प्रणालीबद्ध और विज्ञान पर आधारित है। योगशास्त्र में इन बाधक आदतों या अभ्यासों को व्युत्थान संस्कारों को कमजोर अथवा शिथिल करके हम अपने को सक्षम बना सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''योगशास्त्र दावा करता है कि उसने उन नियमों को ढूँढ़ निकाला है। उपायों की ओर ठीक ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और उसे शक्तिशाली बना सकता है। महत्त्वपूर्ण व्यवहारोपयोगी बातों में यह भी एक है और समस्त शिक्षा का यही रहस्य है। इसकी उपयोगिता सार्वभौमिक है। चाहे वह गृहस्थ हो, चाहे गरीब, अमीर, व्यापारी या धार्मिक, सभी के जीवन में व्यक्तित्व को शक्तिशाली बनाना ही महत्त्वपूर्ण है । ऐसे अनेक सूक्ष्म नियम हैं, जिन्हें हम जानते हैं, इन भौतिक नियमों के परे है। अर्थात् भौतिक जगत्, मानसिक जगत या आध्यात्मिक जगत, इस तरह की कोई नितान्त स्वतन्त्र सत्ताएँ नहीं हैं। जो कुछ है, सब एक तत्त्व है। या हम यों कहेंगे कि यह सब एक ऐसी शुण्डाकार वस्तु है, जो यहाँ पर स्थूल है और जैसे-जैसे यह ऊँची चढ़ती है, वैसे ही वैसे वह सूक्ष्म होती जाती है, सूक्ष्मतम को हम आत्मा कहते हैं और स्थूलतम को शरीर। और जो कुछ छोटे परिमाण में इस शरीर में है, वही बड़े परिमाण में विश्व में है। जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है।

हमें इन योग के नियमों और उपायों को समझकर उनका अभ्यास करना होगा।[२] हममें से अधिकांश लोग विघ्न-बाधाओं को आगे की ओर धकेलते रहते हैं, जिनका सामना हमें करना ही होता है, लेकिन हमें संस्कारों को योग के अनुसार पहले शिथिल कर बाद में पूरी तरह से नष्ट करना चाहिए, जिसे 'दग्धबीज अवस्था' कहते हैं। जैसे बीज को अगर आग से भून दिया जाय, तो वह फिर अंकुरित नहीं हो सकता, उसी तरह व्युत्थान संस्कार हमेशा के लिये नष्ट हो जाते हैं। योग हमें आन्तरिक बल प्रदान करता है, जिससे हम इन विघ्न-बाधाओं का सामना करने में समर्थ होते हैं। स्वामीजी ने कहा है, ''यह एक बड़ा सत्य है कि बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मरण। बल ही अनन्त सुख है, अमर और शाश्वत जीवन है, और दुर्बलता ही मृत्यु।''[३]

पातञ्जल योगसूत्र में चार अध्याय हैं, तीसरा अध्याय है – विभूतिपाद। कई लोग ऐसा मानते हैं कि योग का उद्देश्य विभूतियाँ, सिद्धियाँ अर्जित करना है। परन्तु वास्तव में ये सिद्धियाँ योग में बाधक हैं। महर्षि पतंजलि आगे स्वयं कहते हैं – **ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने**

सिद्धय:[४]। जो समाधि प्राप्त करना चाहता है, परमार्थ मार्ग पर चलना चाहता है, उसके लिये यह उपसर्ग - विघ्न करनेवाली है और व्युत्थान – सांसारिक व्यक्ति के लिये सिद्धि है। योग का एकमात्र उद्देश्य कैवल्य-मुक्ति प्राप्त करना है। योगाभ्यास द्वारा प्रलोभनों, पुराने संस्कारों पर विजय प्राप्त किया जा सकता है, जो कि प्रारम्भ में हमारे सामने अभेद्य दुर्ग की तरह प्रतीत होते हैं। पतंजलि हमारा ध्यान इस ओर दिलाते हैं, कि यम नियम के विपरीत भाव - हिंसा असत्यादि के अनेक प्रकार हैं। जैसे – हिंसा (१) कृत – स्वयं द्वारा की गई (२) कारित - स्वयं न कर दूसरे के द्वारा कराई गई (३) अनुमोदित - दूसरे के किए गए अपराध का अनुमोदन करना। जैसे किसी ने किसी को मार दिया और हमने उसकी प्रशंसा की कि अच्छा किया। ये हिंसा के तीन रूप है। हिंसा के कारण भी तीन हैं – लोभ, मोह और क्रोध। तीव्रता के अनुसार मन्द, मध्य और तीव्र। इस तरह हिंसा के कुल ८१ प्रकार हैं और उनका फल अवश्यम्भावी है, जो अनन्त दुख और अज्ञान देने वाली है।[५]

शक्तिहीन मनुष्य जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता, आत्म-साक्षात्कार का तो कहना ही क्या, जो कि मानव का परम लक्ष्य है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "जिससे बल मिलता है, उसी का अनुसरण करना चाहिए। अन्यान्य विषयों में जैसा है, धर्म में भी ठीक वैसा ही है – जो तुमको दुर्बल बनाता है, वह समूल त्याज्य है। रहस्य-स्पृहा – सिद्धि प्राप्त करने की अभिलाषा मानव मस्तिष्क को दुर्बल कर देती है। इसके कारण ही आज योगशास्त्र नष्ट-सा हो गया है। किन्तु वास्तव में यह एक महाविज्ञान है।[६] उपनिषद भी कहती है – **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो'**[७] – यह आत्मा बलहीन पुरुष को प्राप्त नहीं हो सकती। यहाँ पर आचार्य शंकर इसके भाष्य में बल की व्याख्या करते हैं – बलहीनेन बलप्रहीणेन आत्मनिष्ठा-जनित-वीर्यहीनेन"। यहाँ पर आत्मनिष्ठा से प्राप्त शक्ति को बल कहा है। अन्य जगह आचार्य शंकर कहते हैं – बलं नाम आत्म विद्ययाशेषदृष्टि तिरस्करणम्" – बल वह है जिसके द्वारा आत्मभाव में रहकर विषय दृष्टि का तिरस्कार कर सके। सारांश यह है कि साधक का बल वह है जिससे वह विषयों से प्रभावित न हो या विषय उसे अपनी ओर नहीं खींच सके। यह विषय ही साधक को अपनी तरफ खींचकर उसके बल का नाश करते हैं। यही बल साधक को परमार्थ मार्ग में सहायता करता है।

संसार में उपलब्ध बलों को मुख्य रूप से निम्न भागों में विभाजन किया जा सकता है –

बल के प्रकार

१. जागतिक बल – जो बल जगत में काम आता है, मुख्य रूप से - बाहुबल (शारीरिक बल), धनबल, बुद्धिबल, उच्च पद का बल आदि। इसमें स्थिरता नहीं है और यह लगातार बदलता रहता है। लॉर्ड एक्टन का यह कथन अक्षरश: सत्य है – अत्यधिक बल व्यक्ति को पूर्ण रूप से विनष्ट कर देता है, absolute power corrupts absolutely[९]। जागतिक बल बिना धर्म के हमेशा पतन का कारण होता है, और अनियन्त्रित बल पूर्ण नाश करके रहता है।

२. धार्मिक बल – महाभारत में आता है – "धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षित:"[१०] – जो धर्म का पालन करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है और जो धर्म का नाश करता है, धर्म उसका नाश कर देता है। उपनिषद भी उद्घोष करती है – "तस्मात् धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान्बलीयान् समान् सते धर्मेण..."[११] – धर्म से उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है, इसलिए जिस प्रकार राजा की सहायता से दुर्बल भी प्रबल शत्रु को जीत सकता है, उसी प्रकार धर्म के बल से निर्बल भी बलवान को जीत लेता है। जागतिक बल की तुलना में धार्मिक बल स्थायी है और इस जन्म का अर्जित बल आनेवाले जन्मों में भी काम आता है। इतिहास में हमें इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे महाभारत में पाण्डव सभी प्रतिकूल परिस्थितियों के होने पर भी कौरवों को हराने में समर्थ हुए। अकेले अर्जुन ने विराट युद्ध में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण जैसे योद्धाओं को हरा दिया।

३. संयम बल – इस बल के द्वारा हम इन्द्रियों को निग्रहित करने, संयमित करने में समर्थ होते हैं। इन्द्रिय निग्रह द्वारा मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनती हैं और विषय-भोगों में लिप्त रहने से कमजोर, वीर्यहीन हो जाती हैं, जैसा कि उपनिषद कहती है – "सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज:"[१२] – भोग सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को क्षय करनेवाले हैं।' इसी को तपोबल भी कहते हैं। उपासना भी इसी श्रेणी में आती है, जिसका अर्थ होता है देवता के समीप बैठना। देवता ही साधक को इन्द्रिय-निग्रह की शक्ति देते हैं, और उसकी परमार्थ मार्ग की बाधाओं को दूर

करते हैं। उपनिषद में आता है – "तप: प्रभावात् देव प्रसादाच्च..."[१३] ऋषि श्वेताश्वर ने तपस्या और देवता की कृपा से ब्रह्म को जाना।

४. योग बल – योग का अभ्यास करने से, जो शक्ति प्राप्त होती है, वह योग बल है। जिसके बारे में महाभारत में लिखा है – नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलं...।[१४] – सांख्य के समान कोई ज्ञान नहीं है और योग के समान कोई बल नहीं है। यह वाक्य ऋषि याज्ञवल्क्य ने राजा जनक से कहा कि अध्यात्म मार्ग में योग के समान सहायता करने वाला कोई नहीं है। उपासना देवता में श्रद्धा विश्वास के बिना नहीं हो सकती, परन्तु कुछ योगाभ्यास करने पर परिणाम विभूति आती है, जिसमें अपने आप श्रद्धा आ जाती है। यद्यपि ये विभूतियाँ योग में बाधक हैं, तथापि ये श्रद्धा विश्‍वास उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। वर्तमान युग में मनुष्य श्रद्धाहीन होता जा रहा है, किसी भी तथ्य में बिना प्रमाण के उसे विश्वास नहीं होता, इसलिए योगमार्ग की उपादेयता और भी बढ़ जाती है।

५. आत्म बल : आत्मा से प्राप्त बल आत्म बल है। यह कैसे प्राप्त हो, इसके बारे में उपनिषद कहती है – "आत्मना विन्दते वीर्यं, विद्यया विन्दते अमृतम्"[१५] – आत्मा से ही आत्मा को जानने की शक्ति प्राप्त होती है। उससे ही ज्ञान उत्पन्न होकर अमृतत्व, परब्रह्म की प्राप्ति होती है। ऊपर कहे गए चारों बल, मृत्यु का पराभव करने में समर्थ नहीं हैं। आत्मज्ञान से ही जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हुआ जा सकता है, यही मुक्ति है। जब हम अपने को दुर्बल, परिच्छिन्न, संकुचित मानते हैं, तो हम वैसे ही हो जाते हैं और जब हम अपने को सर्वव्यापी आत्मा के रूप में मानते हैं, तो हमारी शक्ति भी अनन्त हो जाती है। उपनिषद कहती है, 'ऐसे व्यक्ति को पराभव करने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है, देवताओं में भी नहीं, क्योंकि वह सबकी आत्मा हो जाता है।[१६]

हम अद्वैत शास्त्रों का अध्ययन कर सकते हैं, समझने का प्रयत्न भी कर सकते हैं, किन्तु उनको पचाना या व्यवहार में लाना, हममें से अधिकांश के लिये असम्भव है। उसके लिये हमें अधिकारित्व प्राप्त करना होगा, जो या तो योगाभ्यास से या उपासना से प्राप्त होगा। इसके अभाव में अध्यात्म के उच्च आदर्शों को व्यवहार में नहीं ला सकते और मिथ्याचारी हो जाते हैं। हम वह दीखने का प्रयत्न करते हैं, जो हम नहीं हैं, जिसको शास्त्र 'धर्म-ध्वजित्व' कहता है। वहाँ पर सिर्फ धर्म की ध्वजा है, धर्म नहीं है। धार्मिक मिथ्याचारी सबसे निकृष्ट है, जैसाकि श्री रामकृष्ण कहते हैं – "पंचवटी के नीचे एक साधु रुका हुआ था। लोगों के साथ वह खूब वेदान्त चर्चा किया करता था। कुछ दिन बाद मेरे कान में बात पहुँची कि उसका एक स्त्री के साथ अवैध सम्बन्ध हो गया है। इसके बाद एक दिन मैं शौच के लिये उधर गया था, मैंने देखा कि वह बैठा हुआ है। मैंने कहा, 'तुम तो वेदान्त की बड़ी-बड़ी बातें बघारते हो, फिर तुम्हारे बारे में यह क्या सुना जाता है? उसने कहा, 'ऐ ! इसमें क्या है? मैं अभी तुमको समझा देता हूँ कि इसमें कोई दोष नहीं है – अजी, जहाँ जगत ही तीन काल में मिथ्या है, वहाँ क्या केवल यही बात सत्य हो सकती है? यह भी मिथ्या ही है।" यह सुनकर मुझसे नहीं रहा गया, नाराज होकर मैं कह उठा, 'तेरे इस प्रकार के वेदान्त में आग लगे, यह सब सांसारिकता है, विषयी लोगों का ज्ञान है। यह ज्ञान, ज्ञान नहीं है।"[१७]

जागतिक बल मेधा (शुद्ध बुद्धि) के बिना पतन का ही कारण होता है, परन्तु यदि इसका उपयोग जगत के कल्याण, दीन-दुखियों की सहायता आदि में किया जाए, तो यह धर्म में वृद्धि कर सकता है। जब तक पापों का क्षय पुण्यों के द्वारा नहीं होता, तब तक हमें संसार की निस्सारता समझ में नहीं आती, वैराग्य नहीं होता और ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा नहीं होती। जैसा कि कहा गया है – "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसा क्षयात्पापस्य कर्मण:"[१८] – पापों का नाश होने पर ही ज्ञान उत्पन्न होता है। पूर्णरूपेण जगत की निस्सारता का बोध होने पर भी, ईश्वर दर्शन की इच्छा होने पर भी उपासना या योग से अधिकारित्व प्राप्त किए बिना आत्म साक्षात्कार करना असम्भव है।

बल का नाश करने वाले कारण –

येको धावति तं च धावति फणि सर्पं शिखी धावति
व्याघ्रो धावति केकिनं विधिवशाद् व्याघ्रोऽपि तं धावति
स्वस्वाहार विहार साधनविधौ सर्वे जना व्याकुला:
कालस्तिष्ठति पृष्ठत: कचधर: केनापि नो दृश्यते ।।

मेंढक अपने आहार की तरफ दौड़ रहा है, उसको लक्ष्य करके साँप, उसके पीछे मोर, उसको पकड़ने के लिये बाघ, उस पर बाण से निशाना साधता हुआ शिकारी भाग

रहा है। सभी अपने आहार की तरफ भाग रहे हैं, लेकिन आश्चर्य है, सबके पीछे जो काल खड़ा है, उसको कोई नहीं देखता। संसार में सभी लोग दिन-रात इसी तरह व्यस्त हैं। योग हमें संसार को देखने का बृहद् दृष्टिकोण और सूक्ष्म दृष्टि देता है, जिससे बाहर संसार का और अन्दर मन का यथार्थ अध्ययन कर सकते हैं। योग बताता है कि संसार के सभी लोग चार प्रकार के दु:खों से ग्रस्त हैं, हम चाहते तो भोग हैं, परन्तु ये दुख भी हमको भोगने ही पड़ते हैं।

योगसूत्र (२/१५)[१९] - परिणाम-ताप-संस्कार-दु:खैर्गुणवृत्ति-विरोधाच्च दु:खमेव सर्वं विवेकिन:। अर्थात् - परिणाम, ताप, संस्कार और गुणवृत्ति विरोध रूपी चारों दुखों के कारण विवेकी को सभी विषयभोग दुखरूप ही लगते हैं।

१. परिणाम दु:ख – गीता के अनुसार ये विषय-भोग भोगकाल में अमृत के समान और अन्त में विष के समान होते हैं।[२०] सभी भोगों की परिणति दुख के रूप में ही होती है। इसका ज्ञान सामान्य मनुष्य को भोग भोगने के उपरान्त होता है, परन्तु योगी को तो भोग की इच्छा उत्पन्न होते ही दुख दिखाई देता है और प्रवृत्ति रुक जाती है ! क्योंकि उसका अन्त प्रारम्भ से ही दीखता है, वह परिणाम पर दृष्टि रखकर ही कोई कार्य प्रारम्भ करता है। इन्द्रियों को भोग के द्वारा शान्त नहीं किया जा सकता, जैसा कि कहा है – ''जैसे अग्नि में घी डालने से, अग्नि शान्त न होकर और अधिक प्रदीप्त होती है, वैसे ही कामी पुरुषों की कामना विषयभोग से शान्त न होकर और अधिक बढ़ती जाती है।[२१] महर्षि व्यास अपने भाष्य में इसका विज्ञान बताते हैं कि दो कारणों से इन्द्रियों को विषयभोगों द्वारा तृप्त नहीं किया जा सकता। पहला, भोगाभ्यास से इन्द्रियों का विषयों के प्रति राग और अधिक बढ़ जाता है और फिर वे और अधिक भोग चाहती हैं। दूसरा, इन्द्रियों की विषय भोगने की कुशलता बढ़ जाती है और वे पटु हो जाती हैं। जो व्यक्ति विषयभोग द्वारा इन्द्रियों को शान्त करने का प्रयास करता है, उसकी स्थिति ऐसी है कि कोई बिच्छू से डरकर भागा व साँप द्वारा डसा गया या कोई जब दलदल में फँस जाता है, वह जितना बाहर निकलने का प्रयास करता है, उतना ही नीचे जाता है। भोगवृत्ति के अनुसार अत्यन्त प्रिय व स्वादिष्ट भोजन भी जब विषाक्त हो जाता है, तो उसे कोई नहीं खाता, उसी प्रकार परिणाम को सदा ध्यान में रखकर विवेकी को भोगों को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए। विष तो केवल एक बार ही मारता है, लेकिन विषय बार-बार मारते हैं, क्योंकि ये अनादि जन्म-मृत्यु चक्र में फेंक देते हैं।

२. ताप दु:ख – जब कोई भोगों में लिप्त रहता है, तो जो भोग इसमें सहायता करते हैं, उन पर अनुग्रह करता है। जो उसमें बाधा उत्पन्न करते हैं, उन पर क्रोध आता है, उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। इस प्रकार धर्म और अधर्म का संचय होता जाता है, जो भावी जन्मों का कारण बनता है, विषयों के भोग से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं और भोगों के छीने जाने का भय भी लगातार तपाता रहता है। परिणाम दुख केवल योगी द्वारा अनुभव किया जाता है, जबकि ताप दुख सभी को भोगना पड़ता है।

३. संस्कार दु:ख – हमारे पुराने जन्मों के संस्कार, वासनाओं के अनुसार यह जन्म मिला है। इस जन्म में सुख के अनुभव से सुख के संस्कार और दुख के अनुभव से दुख के संस्कार लगातार बनते जा रहे हैं। जैसे संस्कार थे, वैसा भोग मिला, उसे पाकर संस्कार और बलवान हो गए, फिर यदि हम भोगों से दूर भी जाना चाहें, तो ये हमें बलपूर्वक विवश कर देते हैं, जिसको योग ''अनादि दुख स्रोत'' कहता है। योगी का हृदय चक्षु गोलक की तरह कोमल होता है। जैसे कम्बल का कोई रेशा आँख में गिर जाने पर बहुत दु:ख देता है, परन्तु दूसरे अंगों में तो वह सर्दी दूर करके सुख पहुँचा रहा है, उसी प्रकार ये संस्कार, योगी को ही कष्ट देते हैं, संसारी को नहीं, उसको तो ये सुखद लगते हैं।

४. गुणवृत्ति विरोध दु:ख – सम्पूर्ण जगत त्रिगुणात्मक है, सत्त्व, रज और तम से बना हुआ है। ये गुण क्रमश: सुख, दुख, मोह उत्पन्न करते हैं। गुणवृत्ति स्वभाव से ही अति चंचल है, प्रतिक्षण बदलती रहती है, इनमें लगातार संघर्ष ही चलता रहता है। जिसे हम बोलचाल की भाषा में ''मूड बदलना'' कहते हैं, गुणों के लगातार बदलते रहने के कारण होता है। जिससे हमें आज सुख मिलता है, वह कल दुख देने लगता है,

इसलिए विवेकी को यह सारा संसार दुखरूप ही प्रतीत होता है।

हमें परमार्थ मार्ग से बलपूर्वक खींचनेवाले, हमारी आन्तरिक शक्ति का ह्रास करनेवाले उपर्युक्त कहे गए चार दुख हैं। जैसा कि अर्जुन कहते हैं – "हे कृष्ण, यह मनुष्य न चाहता हुआ भी बलात् किस प्रकार पाप का आचरण करता है?[२२] सबसे पहले हमें विचारपूर्वक यह जानना होगा कि हमारे दुख का कारण, चारों में से कौन-सा है और फिर उसको दूर करने का उपाय करना होगा। इसी को विवेक और वैराग्य कहते हैं। जिसके बारे में शंकराचार्य कहते हैं कि "विवेक और वैराग्य ये पक्षी के दोनों पंखों के समान हैं, इन दोनों में से किसी भी एक के बिना कोई साधक अध्यात्ममार्ग पर नहीं बढ़ सकता।"[२३]

प्राय: हमें यह पता होता है कि, हमारे दुख का क्या कारण है, पर उसको छोड़ने में हम अपने आप को असमर्थ पाते हैं जैसा कि दुर्योधन कहता है – "मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, किन्तु इसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म क्या है, किन्तु उससे निवृत्ति नहीं होती।"[२४] दुर्योधन में विवेक की अपेक्षा वैराग्य कमजोर है, जो प्रत्येक साधक का अनुभव है। विवेक-वैराग्य समान मात्रा में नहीं होने से जीवन में निराशा और दुख रहेगा। विषयों के प्रति हमारे अन्दर कितना गहन आकर्षण है, यह उसी को पता चलता है, जो इन्हें छोड़ना चाहता है, उनको नहीं जो इच्छापूर्वक भोगों में लिप्त हैं। महर्षि व्यास के अनुसार कोई भी भोग, बिना प्राणियों को कष्ट दिये सम्भव नहीं है, इसलिए कर्माशय का निर्माण भी होता है।"[२५] सच्चा सुख इन्द्रिय निग्रह से ही प्राप्त होता है, भोगों से नहीं। व्यासदेव कहते हैं –

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखं।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम।। [२६]

संसार में अति उत्कृष्ट भोगों से प्राप्त जितना भी सुख है, वह तृष्णाक्षय, इन्द्रिय-निग्रह से प्राप्त सुख का सोलहवाँ (१/१६) भाग भी नहीं है।

वैराग्य को कैसे बढ़ाया जाय? वेदान्त कहता है कि संसार की परीक्षा करके, जितनी सूक्ष्मता से इस जगत का विवेकपूर्वक हम अध्ययन करेंगे, उतना ही हमें इससे वैराग्य होगा। उपनिषद कहती है, "संसार की परीक्षा करके (लोक और परलोक के समस्त सांसारिक सुखों की विवेकपूर्वक अनित्यता व दुखरूपता को समझकर) वैराग्य को प्राप्त होवें, क्योंकि अनित्य कर्मों से नित्य परमेश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। अत: हाथ में समिधा लेकर विनयपूर्वक गुरु की शरण लें।

बाहरी बाधाओं से तो बच निकलना काफी हद तक सम्भव है, परन्तु हमें भलीभाँति जान लेना होगा कि आन्तरिक बाधाओं का सामना करना ही पड़ता है। अनुभूति के मार्ग पर अग्रसर होते हुए साधक के जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब वह अपने आपको शक्तिहीन निरुत्साहित तथा असहाय पाता है, ऐसे समय योग, जो एक अद्‌भुत अक्षय ऊर्जा का स्रोत है, हमारी सहायता कर सकता है। जो कभी हार स्वीकार नहीं करते, ऐसे ही लोगों के जीवन में ईश्वर की कृपा पूर्णरूप से अवतरित होती है। निष्कर्ष यह है कि जो व्यक्ति इस प्रयत्न में अपनी सारी शक्ति लगा देगा, वही योग का सारतत्त्व तथा उसके महत्त्व को समझ सकेगा। व्यास भाष्य में कहा गया है –

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्।। [२८]

योग का अभ्यास करके ही योग जानना चाहिए, योग से ही योग प्राप्त होता है (निम्नभूमि से सहसा उत्तरभूमि में नहीं पहुँचा जाता)। जो प्रमादरहित योगाभ्यास करता है, वह सदा योग में ही रमण करता है। ○○○

(यह शोध-निबन्ध स्वामी नित्यस्थानन्द, आचार्य, ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र, रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ के निर्देशन में किया गया था, जिसका कुछ अंश यहाँ प्रकाशित किया गया है। सं.)

सन्दर्भ-सूची

१. श्रीमद्भगवद्गीता ७.३; **२.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ४, पृष्ठ-१७३, १९६३ सं.; **३.** वही, खण्ड १९७७; **४.** पातञ्जल योगदर्शन, सूत्र ३/३७; **५.** वही सूत्र २/३४; **६.** विवेकानन्द साहित्य खण्ड - १, पृ. ४४; **७.** मुण्डक उपनिषद - ३.२.४.; **८.** आचार्य शंकर का बृहदारण्यक उपनिषद पर भाष्य ३.५; **९.** www.brainyquote.com/quotes/1/lordacton109401.html; accessed 8 april 2014; **१०.** महाभारत वन पर्व, ३००.७; **११.** बृहदारण्यक उपनिषद, १.४.१४; **१२.** कठोपनिषद - १.१.२६; **१३.** श्वेताश्वतरोपनिषद ६.२१; **१४.** महाभारत, शान्ति पर्व - ३१६.२, गीता प्रेस; **१५.** केनोपनिषद - २.४;**१६.** बृहदारण्यक उपनिषद - १.३.७.; **१७.** श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग, द्वितीय संस्करण, खण्ड-१, पृ-४०८; **१८.** महाभारत, शान्ति पर्व, २०३.८; **१९.** पातञ्जल योगदर्शन सूत्र- २.१५; **२०.** श्रीमद्भगवद्गीता - १८.३८; **२१.** भागवत ९.१९.१४; **२२.** श्रीमद्भगवद्गीता - ३.३६;**२३.** विवेकचूडामणि - ३७४; **२४.** पाण्डवगीता - ५८; **२५.** स्वामी हरिहरानन्द आरण्य, पातञ्जल योगदर्शन तृतीय संस्करण, पृ - १७६; **२६.** व्यास भाष्य, पातञ्जल योगदर्शन, सूत्र - २/४२; **२७.** मुण्डक उपनिषद - १.२.१.(१.२.१२); **२८.** व्यास भाष्य, पातञ्जल योग दर्शन, सूत्र - ३/६

देश और युवाओं के प्रति सोचने की आवश्यकता

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'
विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक प्रयोजनमूलक, हिन्दी विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर (छ.ग.)

भारत की सभ्यता एवं संस्कृति सम्पूर्ण विश्व के प्राचीनतम सभ्यता एवं संस्कृतियों में से एक है। यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति का अनुसरण करके ही सम्पूर्ण विश्व में अनेकानेक सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का अभ्युदय हुआ। भारत एक ऐसा देश है जिसने विश्व में होने वाले अनेक परिवर्तनों को देखा है तथा उसके द्वारा विभिन्न देशों का विश्व के मानचित्र में जन्म हुआ है। भारत ने सम्पूर्ण विश्व को विभिन्न धर्मों के माध्यम से शिक्षा प्रदान की है। नि:सन्देह भारत ने सम्पूर्ण विश्व को विभिन्न धर्मों से हटकर मानव धर्म का पाठ पढ़ाया है। किन्तु आज उस भारत में अनेक कुरीतियाँ, कुव्यवस्था और अन्धकार आदि ने अपना पाँव पसार लिया है। इन विषमताओं को जनमानस से दूर रखने के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये जाते रहे हैं। इन प्रयोगों के अन्तर्गत विभिन्न महापुरुषों ने जन्म लेकर सार्थक प्रयास किये।

आज हमारे देश में सबसे बड़ी आवश्यकता है कि देश के ७५ करोड़ युवा वर्ग के अन्दर एक विशेष प्रकार की क्रान्ति लाने की तथा इन्हें सृजन सैनिक बनाकर राष्ट्र तथा विश्व के सृजन में इनके सकारात्मक योगदान की। हमें चाहिए कि हम इन ७५ करोड़ युवाओं के अन्दर एक ऐसी भावना का विकास करें, जिससे ये सर्वत्र व्याप्त विषमताओं को समूल उखाड़ फेंकने में राष्ट्र की मदद करें। भारत को यदि पूर्ण विकसित राष्ट्र बनाना है, तो हमें सबसे पहले जनमानस में स्वास्थ्य सुरक्षा की भावना को प्रसारित करना होगा। स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु हमें आहार-विहार की सुव्यवस्था को लाना होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को दो बार के भोजन की प्राप्ति आसानी से हो सके। इससे स्वास्थ्य सुरक्षा की भावना का सम्पूर्ण राष्ट्र में विकास होगा तथा सम्पूर्ण जनमानस स्वस्थ होगा, क्योंकि स्वस्थ व्यक्ति ही सभ्य समाज एवं सभ्य राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। इसलिये वर्तमान में हमें स्वास्थ्य संवर्धन हेतु सामूहिक प्रयास करना होगा, जैसे – वनस्पतियों का उत्पादन, भोजन पकाने की विधि में सुधार, सात्विक आहार की भारतीय पाक विद्या, गंदगी और प्रदूषण का निराकरण, नशे का त्याग, व्यायाम और उसका प्रशिक्षण व्रतोपवास, प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी आदि को अपनाने, जीवन में जहाँ तक हो सके लाने का प्रयास करना होगा।

राष्ट्र में व्याप्त अशिक्षा को यदि शिक्षा में परिवर्तित कर दिया जाय, तो काफी सम्भव है कि हम राष्ट्र का पुनर्निर्माण करते हुए इसे जगदगुरु बना सकते हैं। अशिक्षा के अन्धकार को दूर करने के लिए आज बहुत जरूरी है कि युवा वर्ग सामने आएँ और इस अन्धकार को शिक्षा के प्रकाश द्वारा दूर करें। अशिक्षा के अन्धकार को दूर करने के लिये हमें बच्चों को स्कूल जाने के लिए प्रेरित करना होगा। इसके अलावा हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि जो शिक्षित व्यक्ति हैं, वे अपनी पत्नी को भी शिक्षित करें अर्थात् शिक्षित व्यक्तियों की पत्नी अशिक्षित न रहें। इसलिए हमें प्रौढ़-पाठशालाओं का आयोजन, प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा-व्यवस्था, नए स्कूलों की स्थापना, रात्रि-पाठशालाओं का आयोजन, पुस्तकालयों-वाचनालयों की स्थापना आदि को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान करना होगा। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए तथा इसे जनोपयोगी एवं सर्वसुलभ बनाने के लिए ही विश्व स्तरीय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी अद्वितीय विश्वविद्यालय की स्थापना के पीछे एकमात्र उद्देश्य राष्ट्रव्रती युवाओं के अन्दर शिक्षा का प्रसार करना तथा शिक्षित युवाओं की एक ऐसी शक्ति का निर्माण करना है, जो सम्पूर्ण विश्व के कल्याण में भागीदारी करें।

राष्ट्र जागरण के लिये बहुत जरूरी है, उपजातियों का भेदभाव, नर-नारी का भेद, विवाहों में अपव्यय, बाल-विवाह और अनमेल विवाह, शिक्षा व्यवसाय, जेवरों में धन की बर्बादी और बलि-प्रथा आदि कुरीतियों को दूर किया जाय। स्वामी विवेकानन्द ने आह्वान करते हुए नवयुवकों के लिये कहा था कि मेरी समस्त भावी आशा उन युवकों में केन्द्रित है, जो चरित्रवान हों, बुद्धिमान हों, लोक सेवा हेतु सर्वत्यागी और आज्ञापालक हों, जो मेरे विचारों को क्रियान्वित करने के लिये और इस प्रकार अपने तथा देश के व्यापक कल्याण के हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकें। यदि मुझे नचिकेता की श्रद्धा से सम्पन्न केवल दस या बारह युवक मिल जायँ, तो मैं इस देश के विचारों और कार्यों को एक नई दिशा में मोड़ सकता हूँ।

ईश्वरीय इच्छा से इन्हीं लड़कों में से कुछ समय बाद आध्यात्मिक और कर्म शक्ति के महान पुंज उदित होंगे, जो भविष्य में मेरे विचारों को कार्यान्वित करेंगे।

हमारे देश के युवाओं में कभी भी प्रतिभा और क्षमता की कमी नहीं रही है। आज भी उनके समक्ष अपार सम्भावनाएँ हैं। कुछ भी असम्भव नहीं है। युवकों को अपने मन से निराशा एवं हताशा के भावों को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा। अपनी शक्तियों पर, अपनी क्षमता और प्रतिभा पर अटूट विश्वास जगाना होगा। नेपोलियन के उस वाक्य को उन्हें यह बोध कराने की जरूरत है कि 'असम्भव' शब्द उनके शब्दकोश में है ही नहीं। नि:संदेह देश की सच्ची सम्पत्ति हैं उसके वे युवक-युवतियाँ जिनके शरीर की आभा में प्रकृति का सबसे अधिक स्पष्ट दर्शन होता है और जिनके हृदय में उदारता, कर्मठता, सहिष्णुता और अदम्य साहस के स्रोत का प्रवाह पूरे जोरों पर है। युवकों द्वारा की गई थोड़ी-सी समझदारी उनके जीवन को सफलता की स्वर्णिम आभा से आलोकित कर देगी, जिससे उनका तथा राष्ट्र का पूर्ण विकास सम्भव होगा।

भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वही राष्ट्रीय जीवन रूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक चिन्तनशील जीवन शक्ति को दूर फेंक देने की चेष्टा करे तथा शताब्दियों से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है, उससे मुड़ जाने का प्रयत्न करे और वह इस कार्य में सफल हो जाय, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि युवक बुरे नहीं हैं, किन्तु भटक गए हैं, उन्हें मात्र सही दिशा में प्रेरित करने की जरूरत है। उनमें असीम क्षमता है – स्वामी विवेकानन्द, विश्वकवि टैगोर, महामना मालवीय, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, भगत सिंह अथवा सुभाष बोस बनने की। उनमें अधिक-से-अधिक क्षमता है किसी बड़े व्यवसाय को प्रतिष्ठित करने की। वह भी बन सकते हैं – 'टाटा, बिड़ला, अम्बानी। उनमें भी शौर्य है चुनौतियों का सामना करने का, साहस है परिस्थितियों को पराजित करने का। उनमें संवेदना है किसी के दर्द को अनुभव करने की, क्षमता है पीड़ा, पराभव एवं पतन को पराजित करने की, भावना है स्वयं के यौवन की सार्थकता सिद्ध करने की। अत: टैगोर, मालवीय, विवेकानन्द की सार्धशती वर्ष में हमें सत्संकल्प लेने की आवश्यकता है। ○○○

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

प्रारब्धकर्मपरिकल्पितवासनाभिः
संसारिवच्चरति भुक्तिषु मुक्तदेहः।
सिद्धः स्वयं वसति साक्षिवदत्र तूष्णीं
चक्रस्य मूलमिवकल्पविकल्पशून्यः।।५५१

अन्वय – मुक्तदेहः प्रारब्ध-कर्म-परिकल्पित-वासनाभिः भुक्तिषु संसारिवत् चरति। कल्पविकल्पशून्यः सिद्धः चक्रस्य मूलं इव साक्षिवत् स्वयं अत्र तूष्णीं वसति।

अर्थ – देहाभिमान से रहित जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञ पुरुष, प्रारब्ध कर्मों द्वारा कल्पित कामनाओं के द्वारा (भोजन-पान आदि) विषयों में सामान्य संसारी लोगों के समान ही आचरण करता है। परन्तु वह सिद्धपुरुष स्वयं सभी संकल्प-विकल्पों से मुक्त होकर कुम्हार के चाक की नाभि या धुरी के समान शरीर में साक्षी भाव से परम शान्तिपूर्वक निवास करता है।

नैवेन्द्रियाणि विषयेषु नियुङ्क्त एष
नैवापयुङ्क्त उपदर्शनलक्षणस्थः।
नैव क्रियाफलमपीषदवेक्षते स
स्वानन्दसान्द्ररसपानसुमत्तचित्तः।।५५२।।

अन्वय – एषः उपदर्शन-लक्षणस्थः विषयेषु इन्द्रियाणि न नियुङ्क्ते एव न अपयुङ्क्ते एव। स्वानन्द-सान्द्र-रसपान-सुमत्त-चित्तः सः क्रियाफलं ईषत् अपि अवेक्षते न एव।

अर्थ – साक्षिभाव में स्थित रहनेवाला वह ब्रह्मज्ञ पुरुष, न तो इन्द्रियों को भोग्य विषयों में लगाता है और न ही दूर करता है। आत्मानन्द के प्रगाढ़ रसपान में सदा विभोर रहनेवाला, वह कर्म-फलों की थोड़ी सी भी अपेक्षा नहीं करता।

लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना।
शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः।।५५३।।

अन्वय – लक्ष्य-अलक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यः केवलात्मना तिष्ठेत्, अयं स्वयं साक्षात् शिवः एव ब्रह्मविदुत्तमः।

अर्थ – जो लोग लक्ष्य अर्थात् निदिध्यासन और अलक्ष्य अर्थात् विषय चिन्तन, इन दोनों का त्याग करके केवल शुद्ध आत्मा के रूप में स्थित रहते हैं, वे ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ और स्वयं साक्षात् शिव के समान वन्दनीय हैं।

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

२१. धर्म से क्या तात्पर्य है? मनीष, अम्बिकापुर

धर्म एक बहु आयामी शब्द है, जिसका प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। यथा शीतलता बर्फ का धर्म है। कठोरता पत्थर, लोहा आदि कठोर वस्तुओं का धर्म है।

किन्तु धर्म का व्यापक अर्थ है, वह पूरे विश्व ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व का प्रतिपादन करता है।

संसार के सभी प्राणियों और वस्तुओं में जो मूल तत्त्व विद्यमान है, वह ब्रह्म का ही एक अंश है। विश्व-ब्रह्माण्ड में सभी का मूल आधार यही ब्रह्म है। किसी भी वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि का जो तत्त्व को जानने तथा उसका प्रत्यक्ष अनुभव करने की प्रक्रिया भी धर्म कहलाती है। दूसरे शब्दों में जीवन के तथा विश्व-ब्रह्माण्ड के सभी जड़-चेतन को जानने का नाम धर्म है।

२२. जीवन क्या है? मनीष, अम्बिकापुर

विश्व-ब्रह्माण्ड का परम सत्य एवं तत्त्व ब्रह्म है। यद्यपि ब्रह्म जड़-चेतन सभी वस्तुओं में व्याप्त है, किन्तु जीव में ब्रह्म का विशेष प्रकाश है। जब तक किसी भी सूक्ष्म या स्थूल प्राणियों में चेतना रहती है तथा वे सभी प्रणाली अपने-अपने गुण-धर्म के अनुसार कार्यरत रहते हैं। मनुष्य-देह में यही ब्रह्म विशेष

प्रकाशित रहता है। दूसरे शब्दों में देह में जब तक चेतना या चैतन्य अवस्थित रहती है, तभी तक उसे जीवित कहा जाता है। इस चैतन्य सत्ता के देह से विलुप्त हो जाने पर उसे मृत्यु कहते हैं। फिर वह शरीर निर्जीव जड़ की भाँति रहकर धीरे-धीरे सड़ने-गलने आदि की प्रक्रिया के द्वारा समाप्त हो जाता है।
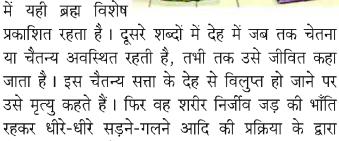
मनुष्य देह में यही चेतना सर्वाधिक सक्रिय रहती है। यही मनुष्य का मूल स्वरूप है। मनुष्य जब इस मूल तत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता है, तब वह जड़ से सर्वथा भिन्न होकर केवल चेतना मात्र रह जाता है।

अपने अन्तर स्थित चेतना की अनुभूति का प्रयत्न करना ही जीवन है। इस चेतना की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिये प्राणी को हजारों-लाखों बार विभिन्न शरीर धारण करना पड़ता है। मनुष्य की देह में ही इस चेतना की प्रत्यक्ष अनुभूति सम्भव है। यही मानव-जीवन का परम लक्ष्य भी है। जिस दिन मनुष्य अपनी जड़ देह से स्वयं का सर्वथा भिन्न होना जान लेता है, तब उसे पुनः देह धारण नहीं करनी पड़ती। इसी का नाम मुक्ति है तथा यही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। यही जीवन है।

नौजवान आओ रे !

(बालकवि वैरागी)

नौजवान आओ रे ! नौजवान गाओ रे !
लो कदम मिलाओ रे ! लो कदम बढ़ाओ रे !!
ऐ वतन के नौजवान,
इस चमन के बागवान,
एक साथ बढ़ चलो,
मुश्किलों से लड़ चलो,
इस महान देश को नया बनाओ रे !
नौजवान आओ रे ! नौजवान गाओ रे !
धर्म की दुहाइयाँ,
प्रान्त की जुदाइयाँ,
भाषा की लड़ाइयाँ,
पाट दो ए खाइयाँ,
एक माँ के लाल एक निशाँ उठाओ रे !
नौजवान आओ रे ! नौजवान गाओ रे !
एक बनो, नेक बनो,
खुद की भाग्य रेख बनो,
सद्‌गुणों के तुम हो लाल,
तुमसे यह जगत निहाल,
शान्ति के लिए जहाँ को तुम जगाओ रे !
नौजवान आओ रे ! नौजवान गाओ रे !
माँ निहारती तुम्हें,
माँ पुकारती तुम्हें,
श्रम के गीत गाते जाओ,
हँसते मुस्कुराते जाओ,
कोटि कंठ एकता के गान गाओ रे !
नौजवान आओ रे ! नौजवान गाओ रे !

(प्रेरणा गीत, एस. एन. सुब्बा राव से साभार)

मेधावी और संघर्षशील बालक-बालिकाएँ

यदि किसी मनुष्य के भविष्य को जानना हो, तो उसके बचपन की छोटी-मोटी घटनाएँ देखनी चाहिए, उससे ज्ञात हो जाएगा कि उसकी स्वाभाविक रुचि किस ओर है और उसका भावी जीवन किस प्रकार का होगा। बात पुरानी है। उन दिनों यदि किसी को डाक द्वारा पत्र भेजना होता था, तो किसी भी कागज पर डाक टिकट (पोस्टल स्टेम्प) लगा देने से वह मान्य होता था। एक मिडिल क्लास के छात्र ने इस प्रकार टिकट लगाकर पत्र भेजा, किन्तु डाक-कार्यालय ने उसे स्वीकार नहीं किया और उसे बैरंग कर दिया। उसे यह बात बुरी लगी। उसने इसका विरोध करने के लिए एक कागज पर टिकट चिपकाकर अपना ही पता लिखा और उसे डाक में भेज दिया। पोस्टकार्ड अस्वीकृत होकर उसके पास ही वापस आ गया और उसे पोस्टकार्ड वापस छुड़ाने के लिए पैसे चुकाने पड़े। छात्र ने पोस्ट मास्टर के पास जाकर तुरन्त शिकायत की। इस सम्बन्ध में बहुत लिखा-पड़ी हुई और अन्त में डाक-विभाग के अधिकारियों को अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी और उस छात्र के पैसे भी लौटाने पड़े।

ये छात्र आगे चलकर देश के महान पत्रकार, लेखक, समाज-सेवी, राष्ट्र-सेवी, स्वतन्त्रता-सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी हुए। उनका जन्म १८३० में प्रयाग के पास अतरसुइया गाँव में हुआ था। उनके नाम के पीछे विद्यार्थी शब्द उनकी विद्या के प्रति दृढ़ निष्ठा का द्योतक है। वे सदैव एक विद्यार्थी की तरह ज्ञानार्जन के लिए तत्पर रहते थे। उन्हें पुस्तकें पढ़ने का एक प्रकार का रोग ही था। किन्तु वे केवल किताबी-कीड़े ही नहीं थे, वे जो पढ़ते एवं कहते उसको जीवन में उतारने का प्रयास भी करते। गरीबों के लिए उन्होंने बहुत सेवाकार्य किए थे। उन्हें भारत के प्रति असीम प्रेम था। उस समय भारत स्वतन्त्र देश नहीं था। भारत की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अपने जीवन का बलिदान दे दिया था। ○○○

मेनिया बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि की थी। मेनिया की बड़ी बहन जब रुक-रुक कर एक पाठ पढ़ रही थी, तो मेनिया ने वही पुस्तक उठाकर तुरन्त पाठ को पढ़ लिया। उसकी एक विशेषता थी कि वह जब कुछ पढ़ने बैठती, तो पूरी एकाग्रता और तन्मयता के साथ पढ़ती। उसके भाई-बहन उस समय चाहे कितना भी शोर करें, उसे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता था। उसे पढ़ने का बहुत शौक था, पर घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। माँ तो बचपन में ही चल बसी थी। पिता को नौकरी से इतना पैसा नहीं मिलता था कि वे मेनिया और उसके भाई-बहनों को अच्छी तरह पढ़ा सकें।

किसी तरह उसने प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूरी की और उसकी कॉलेज में पढ़ने की इच्छा हुई। कॉलेज में पढ़ने के लिए तो पैसे नहीं थे तो उसने छोटे बच्चों को ट्यूशन देना शुरू किया। उसके अन्दर सेवाभाव भी बहुत था। अपने आसपास की अनपढ़ स्त्रियों और किसानों को भी वह पढ़ाती थी। उस समय उसकी उम्र १५-१७ वर्ष की रही होगी। उसे विज्ञान का विषय बहुत ही अच्छा लगता था। उसका चचेरा भाई एक प्रयोगशाला का संचालक था। किसी तरह समय निकाल कर वह प्रयोगशाला में जाती और अकेले ही भौतिक और रसायन विज्ञान की पुस्तकों को देख कर तरह-तरह के प्रयोग करती। धीरे-धीरे उसकी इस क्षेत्र में रुचि बढ़ती गई। आगे चलकर यही मैडम क्यूरी के नाम से विख्यात हुई। उन्होंने भौतिक और रसायन-शास्त्र में कईं संशोधनात्मक कार्य किए और वे इन क्षेत्रों में नोबल पुरस्कार से सम्मानित हुई थीं। उन्होंने रेडियम नामक तत्त्व का अविष्कार किया था। ○○○

काव्य-लहरी

आतंकवाद खतम करना है

डॉ. दिलीप धींग
निदेशक, अंतर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र, चेन्नई

बच्चे-बच्चे का कोमल मन, करुणा का पावन झरना है ।
इस झरने के शीतल जल से, आतंकवाद खतम करना है ।।
मानवता के मानस्तंभ हैं, भोले-भाले प्यारे बच्चे ।।
प्रेम के सन्देशवाहक, मैत्री के उजियारे बच्चे ।
उनसे प्रेरित होकर सबको, वैर-कलह खतम करना है ।।
आतंकवाद खतम करना है ।।१।।

बच्चे जोड़ें परिवार को, बच्चे जोड़ें देश-समाज ।
बच्चे क्या जानें सीमाएँ, बच्चे मानवता के ताज ।।
उनकी निश्छल किलकारी से, सारा जहाँ चमन करना है ।।
आतंकवाद खतम करना है ।।२।।

बड़े प्यार से लड़ते बच्चे, पलभर में हो जाते एक ।
कोई गांठ नहीं है मन में, ना कोई कटुता की रेख ।।
उन्हें देख संकल्प कीजिये, अब ना कभी झगड़ना है ।।
आतंकवाद खतम करना है ।।३।।

बच्चों की तुतलाती बोली, मानव की व्यथा हरती है ।
मजहब मुल्कों की दीवारें, उनकी हँसी व्यर्थ करती है ।।
जात-पाँत और वर्ग-भेद का, षडयन्त्र विफल करना है ।।
आतंकवाद खतम करना है ।।४।।

खूब लड़े हैं, खूब भिड़े हैं, जीता कौन, हारा कौन?
आयुध के सौदागर जीते, हारी मानवता हुई मौन ।।
बेसहारा माँ-बच्चों के, पुनर्वास का श्रम करना है ।।
आतंकवाद खतम करना है ।।५।।

हिंसक भाव अगर जग जाए, बच्चे से कर लेना प्यार ।
उसकी नैसर्गिक मृदुता से, मिट जाएगा मन का खार ।।
इन बच्चों के कल के खातिर धरती का रक्षण करना है ।।
आतंकवाद खतम करना है ।।६।।

जहाँ अहिंसा-ज्ञान नहीं हो, वहाँ मनुजता रोती है ।
बच्चे मूल्यों के रखवाले, मानवता के मोती हैं ।।
उनकी खनक शुद्ध आभा से, हिंसा का तिमिर हरना है ।।
आतंकवाद खतम करना है ।।७।।

आशा की किरण जगाओ तो

डॉ. विनीता दीक्षित द्विवेदी, बी.एच.यू. वाराणसी

दूसरों को गिरानेवाले तो बहुत से मिलते हैं ।
निराश में आशा की किरण जगाओ तो कोई बात बने ।
धधकती आग में घी डालने वाले तो आम है ।
लोगों हेतु सूत्र बनो तो कोई बात बने ।।
ईर्ष्या-द्वेष नफरत करनेवाले तो खूब मिलते हैं ।
निष्ठुर हृदय में प्रेम बीज बो पाओ तो कोई बात बने ।।
जड़े काटने वाले बहुत देखे हैं, मगर ।
नव निर्माण में अग्रदूत बनो तो कोई बात बने ।।
हिंसा विध्वंस का तांडव तो बहुत देख चुके हम ।
किसी जीवन में रिक्तता भर सको तो कोई बात बने ।।
शक्ति को नमन तो सभी करते ही हैं ।
त्यक्त वृद्ध हृदय गुलजार कर सको तो कोई बात बने ।।
सकाम भक्त तो देवालय घुँघरू से जाते देखे हैं ।
निष्काम भक्त बन सको तो कोई बात बने ।।

रामकृष्ण हैं युग चेतना

प्रा. ओ. सी. पटल, आमगांव

रामकृष्ण हैं युग चेतना, जो परमहंस कहलाते हैं ।
सभी धर्म ग्रन्थों को वे नयी दिशा दे जाते हैं ।।
नवजागृति के युग में, रामकृष्ण अवतार लिए ।
धार्मिक दिग्भ्रांतियाँ हरने नये-बोध विचार दिए ।।१।।
सभी धर्म-साधनाओं को, निज जीवन में अपनाते हैं ।
सभी धर्म पंथों की वे अंतिम मंजिल पा जाते हैं ।।
निर्विकारी जीवन के सच्चे प्रतीक कहलाते हैं ।
सभी धर्म मार्गों को वे आत्मोन्नति राह बतलाते हैं ।।
धर्म-धर्म में द्वेष न हो, सबमें सद्भाव जगाते हैं ।
प्रेम, धर्म-समन्वय को, वे युगधर्म बतलाते हैं ।।
नवयुग के निर्माण हेतु जग में नव चेतना जगाते हैं
विवेकानन्द रूप में वे राष्ट्र-निर्माण मन्त्र दे जाते हैं ।।

द्रौपदी का चीर बन जाइए

डॉ. शिवाजी चौहान, झाँसी

शत्रुता के विष से हृदय को दूर कर,
मित्रता के अमृत को मुक्त हो लुटाइए ।
पश्चिम की सभ्यता से करिए स्वयं को मुक्त,
हाथों की जगह पै अब मन को मिलाइए ।।
प्रेम की परम्परा को जीवित हो रखना तो,
आपस में नीर-क्षीर जैसे मिल जाइए ।
दुखियों की पीर और अँखियों का नीर पियो,
सेवा हेतु द्रौपदी का चीर बन जाईये ।।

नैतिक नवोन्मेष में वेदों की भूमिका

डॉ. बी. एल. वत्स, आगरा

मनुष्य जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये साधन रूप में जिन बातों की आवश्यकता है, वस्तुत: उसी का नाम नीति है। नीतिशास्त्र के महान विद्वान चाणक्य का मानना है कि 'सुखस्य मूलं धर्म:' – सुख का मूल आधार धर्म है, इसलिये सर्वोत्तम नीति धर्माचरण ही है। ऋग्वेद में नीति शब्द का प्रयोग अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए हुआ है। उसमें मित्र और वरुण से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि वे हमें ऋजु अर्थात् सरल नीति से अभीष्ट की सिद्धि कराएँ –

ऋतु नीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्।
(ऋक् १/९०/१)

अथर्ववेद में कहा गया है कि पुत्र को पितृव्रत का और माता की आज्ञा का पालन करना चाहिये, पत्नी को पति से मृदु एवं मधुर वाणी में बोलना चाहिये। भाई को भाई से तथा बहन को बहन से विद्वेष नहीं करना चाहिये, परस्पर प्रेम रखकर और समान व्रत धारण करके कल्याणकारी वाणी से बोलना चाहिये –

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रो भवतु संमना :
जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शन्तिवाम्।
मा भ्राता भ्रातरं द्वि क्षन्मा स्वसारभुत स्वसा।
सम्यश्च्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।
(अथर्व ३/३०/२-३)

ऋग्वेद (१०/१९१/२) में सहकारी संगठन एवं समता का उपदेश देते हुए कहा गया है –

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

– अर्थात् तुम सब मिलकर एक साथ चलो, एक साथ स्तोत्र गान करो, तुम्हारे मनोभाव एक समान हों।

उसी वेद के १०/१९१/४ में आगे कहा गया है –

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

हमारी चेष्टायें समान हों, हमारे हृदय के विचार समान हों।

केवलाघो भवति केवलादी। (ऋक्. १०/११७/६)

जो मनुष्य अकेले खाता है, वह अकेले पाप का भागी होता है।

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा :। (ऋक्.१०/११७/४) – परिश्रम किए बिना देवता भी सहायक नहीं होते।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्। (ऋक्. १/१८९/१) – हे अग्निदेव ! हमें धर्म के लिये सन्मार्ग पर ले चलो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। (यजु.४०/२) – इस लोक में हम कार्य करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करें।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति। (अथर्व. १९/५/१७) – ब्रह्मचर्य एवं तप से ही राजा विविध प्रकार से राष्ट्र की रक्षा करता है।

शत हस्त समाहर सहस्र हस्त सं किर। (अथर्व. १९/५/१७) – सौ हाथों से संग्रह करो तथा हजार हाथों से दान करो।

भद्रा उत प्रशसत्यः। (सामवेद – १११)

– सुन्दर वाणियाँ कल्याणकारी होती हैं।

भद्रा हि नः प्रमति। (सामवेद ६६)

– हमारी बुद्धि कल्याणकारी हो।

मनुः कविः। (सामवेद ९०)

– मनुष्य भविष्यद्रष्टा, भविष्य चिन्तक ऋषि है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। (यजु. ३/३५) – सम्पूर्ण जगत् के जन्मदाता तथा हमारी बुद्धि को प्रेरित करनेवाले सविता देवता की उत्कृष्ट ज्योति का हम ध्यान करते हैं।

ऐसे अनेक नीति वचन वेदवाङ्मय में प्रदर्शित हैं। नीति पालन का तात्पर्य यह है कि हम अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के उस पार दृष्टिक्षेप करके अखिल मानवजाति तथा प्राणिमात्र से प्रेम का व्यवहार करें, विश्वबन्धुत्व का उदात्तभाव रखें तथा सभी के साथ मैत्री करें।

ऐसा अत्यन्त विशाल और उदार मनोभाव प्राचीन ऋषियों ने अभिव्यक्त किया है। प्राणिमात्र के प्रति मैं मित्रभाव से ही देखूँ और मेरे मन से सभी अपवित्र विचार-शृंखलाएँ नष्ट हो जायँ, मेरे मन में किसी के प्रति भी शत्रुभाव न हो, कोई बड़ा हो अथवा छोटा हो, मेरा स्नेहभाव उन पर सदा हो, ऐसी प्रशस्त नीति की प्रार्थना वेद में की गई है।

आज के दुख-दावानल में जलते विश्व के लिए वेदों के नीति निर्देश अमृत के समान संजीवनी-शक्ति प्रदायक हैं। जाति-धर्म, प्रान्त-भाषा की दीवारों को तोड़ने वाले वैदिक नीति निर्देश कल्याणकारी एवं अनिवार्य रूप में अनुकरणीय हैं। ○○○

सूफीवाद - एक बिन्दु प्रेम का

डॉ. निधि श्रीवास्तव, जमशेदपुर (बिहार)

प्रख्यात सूफ़ी कवि बुल्लेशाह ने कहा है - 'इक नुक्ते विच गल मुकदी है।' अर्थात् एक नुक्ते (बिन्दु) से बात पलट सकती है। उर्दू भाषा में 'ख़ुदा' लिखते समय यदि एक नुक्ता (बिन्दु) ऊपर की जगह नीचे लग जाए, तो वह शब्द 'जुदा' बन जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे हृदय में अवस्थित प्रेम के बिन्दु को हम कहाँ स्थापित करते हैं, इसी पर हमारे जीवन की दशा एवं दिशा तय होती है कि हमारी आत्मिक उन्नति उर्ध्वगामी होगी या अधोगामी। महान सूफ़ी सन्त जलालूद्दीन रूमी ने भी इसी सत्य को उजागर करते हुए लिखा है – "जब हमारे हृदय में किसी के प्रति प्रेम की ज्वलन्त चिन्गारी उठती है, तो निश्चय ही वही प्रेम उस हृदय में भी प्रतिबिम्बित हो रहा होता है। जब परमात्मा के लिये हृदय में अगाध प्रेम उमड़ता है, निस्सन्देह तब परमात्मा भी हमारे प्रेम में सराबोर होते हैं।" मूलत: सूफ़ी परम्परा का आधार ही ईश्वर के प्रति अगाध अलौकिक प्रेम है।

'सूफ़ी' एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ है - 'विवेक'। सूफ़ी दर्शन और परम्परा की शुरुआत कब, कैसे और कहाँ हुई, इसके बारे में कई प्रकार की अवधारणाएँ हैं। ऐसा माना जाता है कि नौवीं एवं दसवीं सदी में जब इस्लाम काफी प्रभावशाली रूप से अरब देशों से निकल कर पूरे विश्व में स्थापित हो रहा था, तभी सूफ़ीवाद भी उसके साथ-साथ उसके भीतर ही जन्म ले रहा था। यद्यपि कुछ विद्वानों का मानना है कि सूफ़ी-परम्परा इस्लाम के उदय से पहले से ही स्थापित थी और बाद में सूफ़ीवादियों ने इस्लाम कबूल कर लिया। जो भी हो सूफ़ीवाद ने इस्लाम के अन्तर्गत एक बुद्धिजीवी परम्परा की शुरुआत की और उसका विस्तार किया। तेरहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी के बीच सूफ़ीवाद ने बड़ी ही कोमलता और प्रेम से स्वयं को पूरे विश्व में स्थापित कर लिया। भारत में इसे लाने का श्रेय अफगानिस्तान से आए महान सूफ़ी सन्त और साधक ख्वाजा मोइनूद्दीन चिश्ती को जाता है, जिन्होंने अपनी पूरी जिन्दगी अजमेर में बितायी और आज भी अजमेर शरीफ को धर्म-सम्प्रदाय के भेद-भाव से परे उनके पवित्र दरगाह के शहर के रूप में ही जाना जाता है। भारत में मुगलों के शासन काल में, खासकर अकबर के साम्राज्य में सूफ़ी सम्प्रदाय को काफी संरक्षण और प्रोत्साहन मिला, जिसके कारण भारत बहुत से सूफ़ी सन्तों-फ़कीरों का ठिकाना बना जिनमें निज़ामुद्दीन औलिया, रूमी आदि प्रमुख हैं। भारत की आध्यात्मिक और सौहार्दपूर्ण परम्परा को और भारत की सांस्कृतिक विरासत को सूफ़ी धर्मावम्बियों ने निरन्तर समृद्ध किया। वस्तुत: सूफ़ीवाद इस्लाम का ही एक अभिन्न अंग होते हुए भी रहस्यवाद एवं प्रतीकों के माध्यम से अलौकिक ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्त किया। अमीर खुसरो का यह दोहा इसका सर्वोत्तम उदाहरण है -

खुसरो बाजी प्रेम की खेलूँ पी के संग।
जीत गई तो पिया मोरे, हारी तो मैं पी संग।।

ईश्वरीय प्रेम की इस सुन्दर अभिव्यक्ति की तुलना हम मीराबाई और गोपियों की 'मधुर-भाव' की भक्ति से कर सकते हैं। सूफ़ी अनुयायियों ने भी हिन्दू धर्म की भक्ति भावधारा का कभी विरोध नहीं किया।

सूफ़ीवाद का मर्म अपने ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण है। एक ऐसा प्रेमपूर्ण समर्पण, जहाँ स्वयं के सोच-विचार, अनुभव, यहाँ तक कि इन्द्रियाँ और चेतन भी अपने दिव्य प्रियतम से एकाकार हो जाते हैं और उस परम सत्ता की, उसके ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति मात्र बन कर रह जाते हैं। इस परम आनन्द की स्थिति का सिर्फ अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। हम उस दिव्य अलौकिक परम प्रियतम का वर्णन कर भी कैसे सकते हैं, जिसके प्रति पूर्ण प्रेममय समर्पण मात्र से ही हम 'हम' नहीं रहकर 'वह' हो जाते हैं।

खुसरो दरया प्रेम का उल्टी बा की धार,
जो उतरा सो डूब गया जो डूबा सो पार।।

○○○

इस दुर्लभ मानव-जन्म को पाकर भी जो इसी जीवन में भगवान को पाने की चेष्टा नहीं करता, उसका जन्म वृथा है। सत्य और असत्य का सदा विवेक करना चाहिए। केवल भगवान ही सत्य हैं, वे ही नित्य वस्तु हैं, बाकी सभी कुछ असत्य है, अनित्य है। इस प्रकार के विवेक द्वारा अपने मन से अनित्य वस्तुओं को दूर कर देना चाहिए।

– श्रीरामकृष्ण देव

राजीव लोचन मन्दिर (राजिम)

कुमारी प्रतिष्ठा ठाकुर, रायपुर
वाणिज्य आयकर अधिकारी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

महानदी पैरी सोंढुर के संगम पर स्थित राजिम नगर प्राचीन काल से ही इतिहासकारों तथा पुरातत्त्वविदों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ के अनेक प्राचीन मन्दिरों में राजीव लोचन मन्दिर प्रमुख है, जहाँ काले पत्थरों से निर्मित भगवान विष्णु की प्रतिमा स्थापित है।

राजीव लोचन मन्दिर चतुर्थाकार में बनाया गया था। नलवंशी महाराजा विलासतुंग ने इस मंदिर का निर्माण ८वीं शताब्दी में करवाया था। राजीव लोचन की विग्रह मूर्ति के एक कोने में गजराज को अपनी सूंड में कमल नाल को पकड़े उत्कीर्ण किया गया है। विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति में गजराज के द्वारा कमल को भेंट और कहीं नहीं मिलती।

राजीव लोचन मन्दिर के परिसर में राजिम भक्तिन तेलिन मंदिर है, जिसके बारे में एक अनोखी कहानी प्रचलित है। राजिम तेलिन विष्णु भक्तिन थी। उन्हीं के नाम पर इस जगह का नाम रखा गया। एक बार राजिम तेलिन नदी में स्नान करने उतरी, तब बहुत ही बड़ी और गोल शिला देख उसे घानी (तेल-निकालने का यन्त्र) के ऊपर रखने की मंशा से घर ले आई। जब से राजिम तेलिन ने उस शिला को घानी पर रखा तब से उसके व्यवसाय में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

उस वक्त दुर्ग में विष्णु भक्त राजा जगपाल राज्य करते थे। एक रात राजीव लोचन ने उन्हें स्वप्न दिया कि वे राजिम तेलिन के घर जायँ और वहाँ घानी के ऊपर रखी शिला को मन्दिर ले आएँ, क्योंकि उसी शिला में भगवान विद्यमान हैं। उसके बाद राजीव लोचन ने राजा से यह भी कहा कि राजिम तेलिन से बलपूर्वक शिला लेकर उसे दुखी न करें, क्योंकि वे उनकी अनन्य भक्त हैं।

अगले ही दिन राजा जगपाल राजिम तेलिन के घर पहुँच गए। तत्पश्चात उनसे घानी पर रखी शिला की माँग की। राजिम तेलिन ने साफ इन्कार कर दिया, तब राजा ने उन्हें शिला के बराबर भार की स्वर्ण राशि देने का प्रलोभन दिया। राजिम तेलिन ने इसे ईश्वर-इच्छा जानते हुए शिला को तराजू के एक पलड़े पर रखा और दूसरी ओर सोना रखा गया, परन्तु तराजू का पलड़ा एक इंच भी नहीं उठा।

उस रात राजा को पुन: राजीव लोचन ने स्वप्न में दर्शन दिए तथा कहा – ''तुझे अपने धन का बहुत अहंकार है, इसीलिए अब की बार जब तू पलड़े पर स्वर्ण रखेगा, तब उसमें सवा पत्र तुलसी भी रख देना।'' राजा जगपाल को प्रसन्नता हुई और अगले दिन स्वर्ण के साथ पलड़े में सवा पत्ता तुलसी रख शिला के बराबर स्वर्ण राजिम तेलिन को देकर मन्दिर में शिला को प्रतिष्ठित कराया। राजिम तेलिन राजीव भक्तिन माता के नाम से जानी जाने लगीं। उन्होंने मन्दिर के द्वार पर ही समाधि ले ली। इस क्षेत्र के लोग वसन्त पंचमी के दिन राजीव भक्तिन माता महोत्सव मनाते हैं।

राजीव लोचन मन्दिर एक विशाल आयताकार प्राकार के मध्य में बनाया गया है। भू-विन्यास योजना में यह मन्दिर महामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह और प्रदक्षिणा-पथ इन चार विशिष्ट अंगों में विभक्त है।

मन्दिर का महामण्डप आयताकार है तथा प्रवेश द्वार की अन्त:भित्ति कल्पलता अभिकल्प द्वारा अलंकृत है। स्तम्भ तथा दीवारों में अनेक प्रतिमाएँ तथा मुद्राएँ उकेरी गई हैं। बहुत से देवी-देवताओं की मूर्ति भित्ति-स्तम्भ पर सुशोभित हैं। महामण्डप बारह प्रस्तर खम्भों के सहारे बनाया गया है।

महामण्डप तथा गर्भगृह के मध्य में अन्तराल है। यहाँ पर गरुडासीन विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा है। ये अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए हैं। गरुड की मूर्ति के अंकन में अप्रतिम शक्ति और शौर्य के भावों की मंजुल अभिव्यक्ति है।

गर्भगृह में मूल देवता की प्रतिमा है। यह प्रतिमा काले पत्थर की बनी विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है, जिसके हाथों में क्रमश: शंख, गदा, चक्र और पद्म है। भगवान राजीव लोचन के नाम से इसी मूर्ति की पूजा-अर्चना होती है। गर्भगृह प्रदक्षिणा-पथ से घिरा हुआ है।

मन्दिर के दूसरे परिसर में राजिम तेलिन मन्दिर के अलावा राजराजेश्वर, दान-दानेश्वर और सती माता मंदिर भी है। भूतेश्वर, पंचेश्वरनाथ महादेव मन्दिर भी प्रसिद्ध हैं। त्रिवेणी के बीच में कुलेश्वरनाथ महादेव का शिवलिंग स्थित है। उसके महामण्डप के पास एक शिलालेख है जिसके अनुसार यह मन्दिर ८-९ वीं शताब्दी का है। बाढ़ आने

(शेष भाग १९३ पर)

आदिशंकराचार्य

रामकृष्ण झा

सुलभ ज्यातिर्विज्ञान केन्द्र, पालम, नई दिल्ली

आदि शंकराचार्य, जिन्हें भगवद्पादाचार्य के नाम से भी जाना जाता है, जो अद्वैत वेदान्त के प्रणेता थे, उनका मानना है कि आत्मा परमात्मा की एकरूपता पर आधारित है, परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों में रहता है। आदि शंकराचार्य भगवान शिव के अवतार थे। इनका प्रादुर्भाव केरल प्रान्त में अलर्वा नदी के तट पर बसे कालड़ी ग्राम में हुआ था । महान शिवभक्त शिवगुरु नामक पुद्री (नम्बूदरी पाद ब्राह्मण) ने दीर्घकाल तक अपनी पत्नी विशिष्टा देवी के साथ भगवान शंकर की कठोर तपस्या की। भगवान शिव ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा – वर माँगो ! शिवगुरु ने एक दीर्घायु सर्वज्ञ पुत्र माँगा। औढरदानी शिव ने कहा - वत्स ! वह सर्वज्ञ होगा, दीर्घायु नहीं। शिवगुरु ने सर्वज्ञ पुत्र की याचना की। भगवान शिव ने कहा - मैं स्वयं पुत्र रूप में अवतीर्ण होऊँगा। कुछ समय बाद माँ विशिष्टा (सुभद्रा) की कोख से परम प्रकाशरूप दिव्य बालक का जन्म हुआ।

शंकराचार्य सनातन धर्म के एकमात्र दार्शनिक धर्मगुरु हुए, जिन्हें हिन्दुत्व के सबसे महान जगद्‌गुरु का सम्मान प्राप्त है, जो सर्वप्रथम भगवान कृष्ण को ही प्राप्त था। उनकी वाणी में मानो सरस्वती का वास था। उनके दिव्य अलौकिक व्यक्तित्व के प्रमाणक बिन्दु हैं –

१. अद्वैत वेदान्त के प्रणेता

२. सात वर्ष की अवस्था में गुरुगृह नियमानुसार एक ब्राह्मण के घर भिक्षा माँगने के क्रम में ब्राह्मण पत्नी ने उस बालक के हाथ पर एक आँवला रख रोते हुए अपनी विपन्नता व्यक्त की। बालक का हृदय द्रवित हो उठा, उन्होंने महालक्ष्मी स्तोत्र रचकर करुणामयी लक्ष्मी देवी से ब्राह्मण पत्नी की विपदा हरने की प्रार्थना की। महालक्ष्मी ने प्रसन्न होकर सोने के आँवलों की वर्षा कर ब्राह्मण की विपन्नता को दूर कर दिया।

३. जन्मकाल में ही उनके मस्तक पर चक्र, स्कन्द पर त्रिशूल चिह्न निरूपित देखकर ही उनका नाम 'शंकर' रखा गया ।

४. तीन वर्ष की आयु में ही मलयालम भाषा साहित्य पर अधिकार कर लिया।

५. पाँच वर्ष में यज्ञोपवीत के बाद वेदाध्ययन हेतु गुरुकुल में भेज दिया गया, जहाँ दो वर्ष में ही वेद, उपनिषद, पुराणादि ग्रन्थों पर उन्होंने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया।

६. बाल्यावस्था में ही पिता की मृत्यु हो गई। उनके घर से अलवाई (पूर्णा) नदी गाँव से दूर बहती थी, जिससे उनकी माँ को स्नान करने जाने में कठिनाई होती थी, शंकर के प्रार्थना पर नदी की धारा गाँव के पास आ गई।

७. मात्र सात वर्ष की आयु में इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। केरल से लम्बी पद-यात्रा कर नर्मदा तट स्थित ओंकारनाथ में गुरु गोविन्दपाद से योग तथा अद्वैत ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया।

८. गुरु आज्ञा से काशी विश्वनाथ दर्शन के क्रम में काशी गली में एक चाण्डाल उनके घर में आ गया, उन्होंने क्रोधित हो चाण्डाल से हटने को कहा। चाण्डाल संस्कृत में बोला – आप शरीरों में रहने वाले एक परमात्मा की उपेक्षा कर रहे हैं, अत: आप अब्राह्मण हैं। आचार्य शंकर ने इस उत्तर से प्रभावित होकर चाण्डाल के चरणों में नमन कर उसे गुरु मान लिया, वह चाण्डाल स्वयं शिव थे।

९. काशी प्रवास में बड़े-बड़े ज्ञानी, पण्डितों से शास्त्रार्थ कर अपने मत को सिद्ध किया । एक महत्त्वपूर्ण घटना - एक दिन आचार्य अपने शिष्यों के साथ काशी में मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने जा रहे थे। एक युवती अपने मृत पति का सिर गोद में लिए विलाप कर रही थी। आचार्य के शिष्यों ने शव को हटाकर रास्ता देने को कहा। आचार्य के आग्रह पर स्त्री बोली – हे संन्यासी ! आप मुझसे बार-बार शव हटाने के लिये कह रहे हैं। आप इस शव को क्यों नही कहते? यह सुनकर आचार्य बोले – हे देवी ! इस शव में हटने की शक्ति नहीं है। स्त्री ने कहा – आपकी दृष्टि में शक्ति निरपेक्ष ब्रह्म ही जगत का कर्ता है। फिर शक्ति के बिना यह शव क्यों नहीं हट सकता। यह सुनकर आचार्य वहीं बैठ गए, समाधि लग गई। अन्त:चक्षु में उन्होंने देखा सर्वत्र आद्याशक्ति, महामाया लीला विलाप कर रही हैं। उनका हृदय अनिर्वचनीय आनन्द से भर गया और मुख से मातृ-वन्दना की शब्दमयी धारा स्तोत्र बनकर फूट पड़ी - **'इदानीं**

चेन्मातस्तव कृपा नाऽपि भविता, निरालम्बो..आदि ।'

१०. आचार्य शंकर ऐसे महासागर बन गए, जिसमें अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाताद्वैत था, निर्गुण ब्रह्मज्ञान के साथ सगुण साकार भक्ति की धाराएँ एक साथ हिलोरे लेने लगीं। उन्होंने 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का उद्घोष किया। शिव, पार्वती, गणेश, विष्णु आदि के भक्ति रसपूर्ण स्तोत्र की रचना की। सौन्दर्य लहरी, विवेक चूडामणि जैसे ग्रन्थों की रचना की। प्रस्थानत्रय के भाष्य लिखे। अपने अकाट्य तर्क से शैव-शाक्त, वैष्णों का द्वन्द्व समाप्त किया।

११. उन्होंने आसेतु हिमालय तक की सम्पूर्ण भारत यात्रा कर चार मठों की स्थापना की। सम्पूर्ण देश को सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा भौगोलिक एकता के अविच्छिन्न सूत्र में बाँध दिया। उन्होंने मानव जाति को जीवनमुक्ति का सूत्र दिया - दुर्जन सज्जन बने, सज्जन शान्त बने, शान्तजन बन्धनों से मुक्त हों और अन्य को मुक्त करें। आदिशंकर ने अपना उद्देश्य पूरा कर ३२ वर्ष की आयु में नश्वर देह का त्याग कर दिया। ❍❍❍

(पृ. १९० का शेष भाग)

पर यह मन्दिर पूरा डूब जाता है, केवल उसका कलश भाग दिखाई देता है। इस शिवलिंग में सिक्का डालने से वह नीचे चला जाता है और उसकी प्रतिध्वनि गूंजित होती है।

त्रिवेणी संगम पर होने के कारण राजिम को छत्तीसगढ़ का प्रयाग कहा जाता है। इसी कारण यहाँ श्राद्ध, पिण्डदान, पर्वस्नान आदि कार्यों के लिये प्रदेशभर से लोग आते हैं। प्रतिवर्ष यहाँ पर माघ पूर्णिमा से लेकर शिवरात्रि तक एक विशाल मेला लगता है। इस अवसर पर छत्तीसगढ़ के कोने-कोने से सहस्त्रों यात्री संगम स्नान करने तथा भगवान राजीव-लोचन एवं कुलेश्वर महादेव के दर्शन करने आते हैं।

हाल ही में राजिम में हुए उत्खनन से देश का सबसे पुराना परकोटा मिला है, जो २२०० साल ई. पू. पुराना है। छत्तीसगढ़ शासन के पुरातत्त्व सलाहकारों के अनुसार देश में मन्दिरों के चारों ओर दीवारें बनाने की प्रथा छत्तीसगढ़ से शुरू हुई है। उत्खनन के दौरान राजीव लोचन मंदिर के सामने से दो मूर्तियाँ तथा सील भी मिली हैं।

इस प्रकार राजिम का इतिहास काफी प्राचीन काल से जुड़ा है और इसका महत्त्व आज भी उतना ही है, जितना पहले था। ❍❍❍

विवेकानन्द रथ का छत्तीसगढ़ प्रवास

एक रथ-यात्री की डायरी से

छत्तीसगढ़ कॉलेज, रायपुर में हमलोग १२ बजे पहुँचे और ३.०० बजे तक रहे। कॉलेज परिसर में बच्चे दो लाइन में खड़े होकर बहुत देर तक पुष्प-वृष्टि करते हुए स्वामी विवेकानन्द की जय-ध्वनि करते रहे। प्राचार्य जी और अध्यापकों ने स्वामीजी की मूर्ति पर माला पहनायी। १ बजे सभा प्रारम्भ हुई। स्वागत भाषण डॉ. अशोक शर्मा और स्वागत गान कुमारी आरजू ने गाया। सभा को स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, राष्ट्रीय सेवा योजना के क्षेत्रीय राज्य सम्पर्क अधिकारी डॉ. समरेन्द्र सिंह, प्राचार्य डॉ. सी. एल. देवांगन, रा.से.यो. के समन्वयक श्री वासुदेव साहसी, प्रो. श्री टोपलाल और अंजनी सोनी आदि ने सम्बोधित किया। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने बच्चों को स्वदेश-मन्त्र की शपथ दिलायी और डॉ. समरेन्द्र सिंह जी के आग्रह पर 'जय-जगत' गीत को बच्चों से गवाकर सभागार और कॉलेज-परिसर को गुंजायमान कर दिया। सभा का सुसंचालन डॉ. सुभद्रा राठौर ने किया।

जे. एन. बहुउद्देशीय उ.मा. विद्यालय, रायपुर में रथ ४.०० बजे से ५.०० बजे तक रहा। यह बहुत ही पुराना विद्यालय है। वहाँ के प्राचार्य, शिक्षकों और छात्रों ने स्वामीजी की भव्य मूर्ति का दर्शन किया और पुष्प तथा माला अर्पित किए। उसके बाद वहाँ के सुन्दर सभागार में सभा हुई। प्राचार्य जी ने विद्यालय की गरिमा से छात्रों को अवगत कराया। स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन-चरित पर प्रकाश डाला। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने स्वदेश मन्त्र की शपथ दिलायी। इस विद्यालय में रथ के स्वागत का आयोजन श्री प्रशान्त ठाकर ने किया था।

शनिवार, दिनांक १ फरवरी, २०१४

साइंस कॉलेज, रायपुर में रथ प्रात: ९.३० से १०.३० बजे तक रहा। वहाँ के प्राचार्य जी ने अपने महाविद्यालय परिवार के साथ फूल और माला से रथस्थ स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति का स्वागत किया। कॉलेज के कुछ प्राध्यापकों, छात्र-छात्राओं ने स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डाला। उसके बाद रथ धीरे-धीरे जन-दर्शन कराते हुए आगे बढ़ चला चिर प्रतीक्षित विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा की ओर। (क्रमश:)

समाचार और सूचनाएँ

वड़ोदरा, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल ने ९वीं से १२वीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए राज्य-स्तरीय प्रश्नोत्तरी स्पर्धा (Quiz Competition) आयोजन की थी, जिसमें ९८९ विद्यालयों के ७४,५२९ विद्यार्थियों ने भाग लिया । इसके पुरस्कार वितरण समारोह के विशेष अतिथि के रूप में गुजरात की मुख्यमन्त्री माननीया श्रीमती आनन्दीबेन पटेल ने विद्यार्थियों को पुरस्कार प्रदान किए। मुख्यमन्त्री महोदया ने रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा द्वारा परिकल्पित स्वच्छ भारत अभियान का लोकार्पण पत्रिका विमोचन द्वारा किया। इस पत्रिका में वड़ोदरा आश्रम द्वारा स्वच्छ भारत अभियान से सम्बन्धित प्रस्तावित कार्यक्रमों की जानकारी है।

कोलकाता, रामकृष्ण मिशन सेवा-प्रतिष्ठान द्वारा सागर द्वीप में मकर संक्रान्ति मेले में पूर्ण दिवसीय चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया। १० जनवरी से १५ जनवरी तक के इस शिविर में ५२२६ लोगों को चिकित्सा प्रदान की गई, जिसमें ४० रोगियों की अस्पताल में चिकित्सा प्राप्त कराई गई। इसके अलावा तीर्थयात्रियों को १५० कम्बल और ४५०० धार्मिक पुस्तकें भी बाँटी गईं।

मनसाद्वीप आश्रम ने गंगासागर मेले के उपलक्ष्य में १२ से १६ जनवरी के बीच एक शिविर का आयोजन किया। इसमें ८३५ तीर्थयात्रियों को नि:शुल्क आवास एवं भोजन की व्यवस्था प्रदान की गई। इसके अलावा प्रतिदिन २५० अनिवासी तीर्थयात्रियों को भोजन-प्रसाद दिया गया। शिविर में भजन एवं प्रवचन का भी आयोजन किया गया।

पालाई (केरला) आश्रम में २० जनवरी को नवनिर्मित होमियोपैथी चिकित्सा भवन का उद्‌घाटन रामकृष्ण संघ के महासचिव श्रद्धेय स्वामी सुहितानन्दजी महाराज के करकमलों द्वारा हुआ।

तिरुवनन्तपुरम् (केरला) के उपकेन्द्र नेट्टायम् में २२ जनवरी, २०१४ को स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की शुभ तिथि के उपलक्ष्य में साधु निवास का उद्‌घाटन रामकृष्ण संघ के महासचिव श्रद्धेय स्वामी सुहितानन्द जी महाराज द्वारा हुआ।

बाढ़ राहत कार्य : जम्मू-कश्मीर में बाढ़ और भू-स्खलन ग्रस्त लोगों के राहत कार्य को जारी रखते हुए रामकृष्ण मिशन, जम्मू ने ५२ गाँवों के ४७७ परिवारों को २००० कोरूगेटेड शीट्स, ४०० लौह पाईप, ७४४ कम्बल, ६८९ शॉल, ८३४ जैकेट और ४५० बर्तन-सेट का वितरण २ जनवरी से १४ जनवरी के बीच किया।

हुडहुड चक्रवात राहत कार्य : आन्ध्र-प्रदेश के विशाखापट्टनम् जिले में रामकृष्ण मिशन, **विशाखापट्टनम** द्वारा १०५९ सौर लालटेन और २११८ कम्बल, १०५९ परिवारों को २ से ९ जनवरी के बीच बाँटे गए।

अन्य राहत कार्य : नवम्बर, २०१४ से जनवरी, २०१५ के बीच विभिन्न आश्रमों के द्वारा निम्नलिखित राहत सामग्रियाँ वितरित की गईं –

अगरतला : मच्छरदानी १४६
आँटपुर : साड़ी ३३१, धोती ५९
चेरापुँजी : साड़ी २००
इच्छापुर : कपड़े १८९ एवं स्लेट ११
जयरामबाटी : साड़ी ४४६५ एवं धोती ५००
मलयंकरणी : धोती १५२
मेदिनीपुर : साड़ी २३५ एवं धोती १०
नओरा : साड़ी ७७५, धोती २०० तथा आलू १०० कि.ग्रा., चावल १०० कि.ग्रा., मच्छरदानी ३५ और बर्तन २५ सेट
नरोत्तम नगर : टी-शर्ट्स १६३
पूरी मठ : धोती २५ और चादर २५
रहड़ा : मच्छरदानी २१०, साड़ी २००, धोती १५, चादर ८७, फ्रॉक १३, चूड़ीदार १३, बेडशीट ४०, पैण्ट २७, शर्टस २४, नारियल तेल की शीशी ८६४ और साईकल ९ तथा ४ जनवरी को १४ पैण्ट, १४ शर्टस, १६ फ्रॉक और १३ फ्रॉक
रामहरिपुर : साड़ी ४०० और धोती १००

आर्थिक राहत कार्य : निम्नलिखित आश्रमों ने निर्धन परिवारों को सिलाई मशीने बाँटी –

चण्डीपुर : सिलाई मशीन २, **चेरापुँजी** : सिलाई मशीन १५, **रहड़ा** : सिलाई मशीन १०. ○○○

भावधारा प्रगति की ओर...

शिक्षक-कार्यशाला का आयोजन

१३ नवम्बर, २०१४ को रामकृष्ण विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी, छत्तीसगढ़ में १२.३० बजे शिक्षक-सेमीनार का आयोजन किया गया। विवेकानन्द आश्रम, श्यामलाताल के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज ने शिक्षा पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हम क्या काम कर रहे हैं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, किस भावना से काम कर रहे हैं, यह महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने तीन मजदूरों के कार्य करने और गंगा नदी का उदाहरण देकर इसे स्पष्ट रूप से सरस बनाकर समझाया। विद्यार्थी जीवन में शिक्षा का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, इसलिये बच्चों को हमेशा नैतिक मूल्यों की शिक्षा दें। सेना में कहा जाता है – **डू आर डाइ, नौट आस्क ह्वाइ?** किन्तु हमारे यहाँ कहा जाता है – **डू फॉर अदर्स, डाइ फॉर अदर्स।** रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने कहा कि विश्व में जितनी क्रान्तियाँ हुईं, उसमें लोकशिक्षकों का बहुत योगदान रहा है। समाज को सुदृढ़, सुशिक्षित और समृद्ध बनाने में वहाँ के देशवासियों की महान भूमिका रहती है। एक सुसंस्कृत देशवासी, प्रबुद्ध नागरिक का निर्माण शिक्षा से होता है। वह शिक्षा शिक्षक देता है। इसलिये समृद्ध, सुखी, महान भारत के निर्माण में शिक्षकों का महान योगदान है। शिक्षक बच्चों में नैतिकता, देशप्रेम और विश्वव्यापी उदारमनोभाव के साथ-साथ मानव-विकास में उपयोगी नयी वैज्ञानिक तकनीकि की भी शिक्षा दें, जैसा स्वामी विवेकानन्द जी चाहते थे।

श्रीरामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर, (छत्तीसगढ़) के सचिव श्री सतीश द्विवेदी जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। उन्होंने अपनी सद्य: जर्मनी यात्रा की एक घटना का उल्लेख किया, जिससे वहाँ के देशवासियों में देशप्रेम की झलक मिलती है। इनके द्वारा एक स्कूल के भ्रमण के दौरान वहाँ बच्चों ने पूछा – 'हमारा स्कूल आपको कैसा लगा? हमारा देश आपको कैसा लगा?'

विद्यापीठ में गुरु घासीदास जयन्ती मनाई गई

१८ दिसम्बर, २०१४ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में गुरुघासीदास जयन्ती समारोह मनाया गया, जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में थे गायत्री ग्रुप ऑफ हास्पीटल के निदेशक डॉ. अरुण मढ़रिया जी और अध्यक्ष स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी थे। विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने गुरुघासीदास जी के जीवनवृत्त पर विस्तृत प्रकाश डाला। अतिथियों का स्वागत प्राचार्य श्री एच. डी. प्रसाद जी ने और धन्यवाद ज्ञापन बी. एड. विभाग की प्राचार्या श्रीमती रश्मी पटेल जी ने किया। बच्चों ने गुरु घासीदास जी द्वारा प्रवर्तित पंथी नृत्य किए और 'आज वन्दना लगावों', 'आए हौ शरण मँह' और 'जय हो छत्तीसगढ़ मैया' के गीत गाए।

भिलाई में भक्त-शिविर का आयोजन

२८ दिसम्बर, २०१४ रविवार को रामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी के निर्देशन में एक भक्त-शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें भक्तों को ध्यान का अभ्यास कराया गया और श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा के साधनात्मक जीवन पर चर्चा की गई। श्रीमती तनुजा कश्यप ने श्रीमाँ के दैनिक जीवन में उपयोगी तथ्यों पर प्रकाश डाला। अन्त में भक्तों के प्रश्नों के उत्तर और 'श्रीरामकृष्ण शरणम्' से शिविर सम्पन्न हुआ।

युवा-शिविर आयोजित हुआ

३ नवम्बर, २०१४ को त्रिदिवसीय छत्तीसगढ़ राज्यस्तरीय युवा प्रशिक्षण शिविर का आयोजन चाम्पा विवेकानन्द युवा महामण्डल के द्वारा किया गया, जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी यज्ञधरानन्द, स्वामी तन्मयानन्द, श्री एस. के पाढ़ी और श्री आलोक शर्मा ने युवकों का मार्गदर्शन किया। शिविर में कुल २५३ युवाओं ने भाग लिया।

श्रीरामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर में विविध कार्यक्रम – १४ दिसम्बर, २०१४ को मन्दिर में श्रीरामकृष्ण के जीवन-दर्शन पर स्वामी सत्यरूपानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने व्याख्यान दिए।

भक्त-शिविर आयोजित हुआ

१५ दिसम्बर, २०१४ को रामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर में एक भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया। शिविर प्रात: ९ बजे से शाम ५ बजे तक चला। शिविर का संचालन स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने किया। शिविर में स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने दैनन्दिन जीवन में माँ सारदा नामक विषय पर प्रकाश डाला। ○○○